जन-ज्ञान-प्रकाशन का ७६ वाँ पुष्प

॥ ओ३म् ॥

ईश्वर-भक्ति

स्व० स्वामी सर्वदानन्द जी सरस्वती की लेखनी से

प्रभु-प्राप्ति
का
सरल-प्रेरक मार्ग-दर्शन

जन-ज्ञान-प्रकाशन
नई दिल्ली-५

प्रकाशक—
जन-ज्ञान-प्रकाशन
१५९७ हरध्यान सिंह मार्ग
नई दिल्ली—५

मार्च १९७२ दूरभाष-५६६६३९

मूल्य— ६० पैसे, ४०) सैकड़ा

समाचार पत्र जन-ज्ञान [मासिक] के स्वामित्व एवं अन्य विषयों से सम्बन्धित विवरण

१ प्रकाशन स्थान	नई दिल्ली
२ प्रकाशन अवधि	मासिक
३ मुद्रक प्रकाशक-संपादक का नाम	राकेश रानी
४ (क्या भारत का नागरिक है ?)	हां
५ (यदि विदेशी है तो मूल देश)	×
६ पता	१५९७ हरध्यानसिंह मार्ग नई दिल्ली ५
६ उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-५

मैं, राकेश रानी एतद्‌द्वारा घोषित करती हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

प्रकाशक के हस्ताक्षर
राकेश रानी

ता० १.३.७२

भूमिका

ओं विश्वानि देवि सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव
॥यजुर्वेद ३० । ३ ॥

जो जो नर अपना हित चाहवें,
भक्ति-मार्ग ही वे अपनावें ।

ईश्वर भक्ति की चार मंजिलें (कांड) हैं। संस्कृत भाषा में इनके नाम-कर्म, ज्ञान, उपासना और साक्षात्कार हैं। एक का दूसरे से बड़ा ही गहरा सम्बन्ध है। एक के सुधरने में दूसरे का सुधार और बिगड़ने में बिगाड़ है, इसी कारण से कर्म-काण्ड पर भली भाँति आचरण करने से मनुष्य विवेकी हो जाता है और उपासना की मंज़िल में शान्ति प्राति होती है।

निश्चय शक्ति के दृढ़ हो जाने से "ज्ञान-कांड" को बड़ी ही सहायता मिलती है—ये सब दृढ़ विश्वास की मंज़िल की सीढ़ियां हैं। फिर मनुष्य साक्षात्कार में विश्वास प्राप्त करके दृढ़ निश्चय की ओर झुकता ही जाता है। इसके बाद ईश्वर-भक्त की विचार धारा उस एक ओंकार की ओर बहकर अन्त में एकता में लीन हो जाती है।

दुई[1] का परदा उठे दिलों से, न याद मैं हूँ न और तू हो,
यह चाहे चाहत में तेरे भगवन्! हमेशा डूबा दिल सब हो।
जिधर मैं देखूँ, नज़र तू आए, तेरा ही जलवा हर एक सू[2] हो,
न हो मिजाज़ी[3] से दिल की रग़बत,[4] हक़ीक़ी[5] में यार मूबमू हो।

बस यहां ही मनुष्य की चेष्टाएँ समाप्त हो जाती हैं। (क्या था—अब क्या हो गया—कुछ कहने में नहीं आता—एक मामूली परस्पर भेद से प्रभु से वियोग हो जाता है) यह ईश्वर-भक्तों का इशारा है, समझ लिया इसे जिसने उसका दुनिया से किनारा है। मैं कोई योग्य लेखक नहीं हूँ, भूल-चूक को सज्जन पाठक अपनी उदारता से सुधार लें—यही निवेदन है। ओं शम्।

निवेदक—

बसन्त, १९४०

(स्वामी) सर्वदानन्द

---

१. परायान। २. ओर ३. सांसारिक बातें। ४. लगाव। ५. प्रभु से प्रेम।

कर्मकांड

हुकम है शरअ[१] का तू हो पाक-दिल,[२]
हो नेक, सबसे मुहब्बत से मिल।

नेक काम मनुष्य को नेक बनाता है और बुरे कामों से मनुष्य बुरा बन जाता है। नेक काम से हृदय शुद्ध होता और बुरे काम से अज्ञान बढ़ता है। नेक आदमी प्रभु का इच्छुक और इच्छाओं का, जो मनुष्य को बुरे कामों की ओर खींचतीं हैं, दमन करता है। पापों का रास्ता खुल जाने से संसार में कष्ट और मुसीबतें दिन प्रति दिन बढ़ती जाती हैं। कर्मण्यता मनुष्य को पापों से हटा कर कल्याण-मार्ग पर अग्रसर करती है। बुरे काम न करो—दुःख पाओगे, कमजोर हो जाओगे। यह बात सत्य है कि कोई भी पुरुष शुरू से ही अपने आप बुरा या भला नहीं है, जिस स्टेशन पर वह खड़ा है उसके एक ओर बुराई और दूसरी ओर भलाई है। यदि वेसमझी से वह अपने क़दम को बुराई की ओर बढ़ाता है तो उतना ही अधिक भलाई से दूर हो जाता है। पर, यदि वह सोच समझ कर पुण्य-मार्ग को ग्रहण करता है, तो उतना ही अधिक वह सुख पाता है। यही चक्कर आगे चलता हुआ एक को तो प्रभु से जा मिलाता है और दूसरे को संसार में ही घुमाता रहता है। परन्तु आजकल सिद्धांत भी बदल गया है—जिस काम के करने से मनुष्य का हृदय पवित्र और अन्तःकरण शुद्ध हो, उसे तो कोई विरला ही निभाता है जिससे सब को आराम हो, दुःख, सुख में परस्पर सहयोग हो, अन्याय से किसी को कष्ट न हो, उस काम को कोई कोई ही करता है। परन्तु आजकल हर कोई वाहरी आडम्बरों का शौकीन है और इनके विरुद्ध कही गई बातों पर कान तक नहीं धरता।

जैसे कोई मत ईश्वर की पूजा बिल्कुल चुपचाप करना अच्छा मानते हैं और कोई घंटा, घड़ियाल बजा कर पूजा-पाठ करना ठीक मानता है, कोई माला से ईश्वर को जपता है तो दूसरा अग्निको तपता है, एक का मुख पश्चिम को है तो दूसरे का पूर्व को, किसी ने मोक्ष को कैसा माना है, तो दूसरे ने उसे उलटा जाना है, इस विषय में कहाँ तक कहें, हर एक मत ने अपने को दूसरे से पृथक करने का कोई न कोई निराला ढंग निकाला हुआ है। सब किसीहद तक ठीक हो सकते हैं परन्तु वास्तविकता को ठीक रखने में सहायक हों, पर

१. असूल धर्म का नियम अथवा सिद्धांत। २. पवित्र हृदय वाला।

ऐसा तो न हुआ। मनुष्य ने बाह्य-आडम्बर को ही सब कुछ मानकर असलियत को खो दिया, जिससे यह संसार झगड़ों का केन्द्र बन गया। धर्म की तो यह आज्ञा थी कि मनुष्य नेक और शुद्ध आचरण करता हो, उसके हृदय में घमंड और अभिमान न हो, एक दूसरे के साथ प्रेम का वर्ताव करें। शत्रुता के बीज बोने से और फसाद करने से सदा डरें—यह तो हुआ। ढोंग को वास्तविकता का स्थान देने से सैकड़ों प्रकार के बखेड़े होंगे। यह तो ठीक है कि मनुष्यों में कुछ न कुछ भेद होता है, परन्तु इस भेद की अधिकता को ज़माना शत्रुता कहता है। असूल तो झगड़ों को मिटाता है, इसकी अज्ञानता से मनुष्य झगड़ों को उठाता है। असलियत तो यह है—

नेकी की ताकत नहीं तो वदी[1] से परहेज़ कर।
अपने ऊपर ज़ुल्म करने से सदा ईश्वर से डर॥

मनुष्य का यह मुख्य कर्तव्य है कि वह शुभ काम करने वाला ही बने। यदि इसमें यह शक्ति न हो तो बुरे कामों से दूर रहना तो आवश्यक है। यह तरीका तो संसार के हित और कल्याण का है। जब मनुष्य अपने स्वभाव को बुराई से हटा कर उसके प्रभाव को दिल से मिटा देता है, तब उसका स्वयं नेकी करने का स्वभाव हो जाता है। चित्त की प्रवृत्ति किसी न किसी ओर होनी तो आवश्यक है, बुराई का स्रोत बन्द होते ही भलाई का मार्ग आप ही खुल जाता है। जो मनुष्य किसी के साथ बुराई करता है वह आज नहीं तो कल मुसीबत में फँसता है। अन्याय से किसी को दुःख पहुंचाना अपने आप को स्वयमेव मुसीबतों में फँसाना है। परमात्मा दुःख-नाशक है—अतः जो मनुष्य किसी को मुसीबत से बचाता है वह भी अपनी योग्यता के अनुसार प्रभु के इस गुण का भागी बन जाता है, फिर कभी वह कष्ट नहीं पाता। प्रभु स्वतंत्र है—अतः जो कोई किसी को बन्धन से मुक्त कराता है, वह मुक्ति पद को पाता और प्रभु के समीप हो जाता है। प्रभु दयालु है—अतः जो किसी पर दया करता है वह अमरत्व प्राप्त कर कभी नहीं मरता। हर हाल में खुश रहना, बुरी बात मुख से कभी न कहना, सुख दुःख के आघात को शान्ति-पूर्वक सहना, परमेश्वर की आज्ञा है।

इनके बदले में स्वास्थ्य, प्रसन्नता और सम्मान पाता है, इसलिए मनुष्य बुरे कामों से बचे और भलाई के लिए आगे बढ़े—संसार के किसी मनुष्य को दुःख देना किसी धर्मवान् का कर्तव्य नहीं है। मेरे मित्र ! आप तनिक इन असूलों पर ध्यान दें कि ये मनुष्य को दुनिया के रास्ते से निकाल कर प्रभु से मिलाप की ओर किस प्रकार ले जाते हैं जो मनुष्य को अन्याय से कष्ट पहुँचाता

---

१. बुरे काम।

है वह प्रभु से दूर हो जाता है। भलाई करना, बुराई से परे रहना और परहेज़गारी का जीवन बिताना परमेश्वर को प्राप्त करने का एक विशेष मार्ग है। और किसी भी ईमानदार को जो सच्चे अर्थों में धर्मवान् है, दूसरों को कष्ट देने का ध्यान तक नहीं हो सकता। धर्म एक सच्चा मार्ग है जो प्रभु तक जा पहुँचता है—इस पर चलने वाला कभी भटकता नहीं। वह उपाय जो प्रभु से मिलाप में सहायक हो, उस पर आचरण करने से कौन कष्ट पाता है? मनुष्य की गिरावट का मुख्य कारण दूसरों को दुःख पहुँचाना ही है—

बुराई या भलाई जो हैं करते,
सदा उसका हैं वैसा फल वे भरते।

मनुष्य बुरे वा भले काम के प्रभाव से कभी बच नहीं सकता। यह नियम बड़ा मज़बूत और बारीक है। सारा संसार इसी नियम के अनुसार चल रहा है किसी के पांव सफलता चूम रही है तो कोई अपने (व्यक्तित्व) को ही मिटा रहा है। विशारदों ने इसकी खोज की है यह नियम तो जैसे का तैसा है—रत्ती भर भी नहीं बदला। मनुष्य पहाड़ों की कन्दराओं में जाकर अपने को छिपाए, चाहे अपने को सागर की तह में जा बिठाए और चाहे आकाश पर उड़ जाए—पर इस संसार भर के राज्य में कोई ऐसी जगह नहीं जहाँ कर्म अपने परिणाम से पीछा छुड़ा सकें। इसीलिए विद्वान् ने कहा है कि जो मनुष्य औरों के साथ बुराई अथवा भलाई करता है, उनका परिणाम लौट कर उसी को प्रभावित करता है जिससे सांसारिक दुःख या सुख पैदा होता है। और, यदि भला काम फल की इच्छा से रहित हो, जिस में दिखावट या बनावट का लगाव न हो तो वह (भलाई) कर्त्ता को मोक्ष की ओर ले जाता है इसलिए धर्म की यह आज्ञा है कि बुरे कामों का त्याग ही करना चाहिए और नेक कार्य यदि फल की दृष्टि रखकर किया जावे तो वह सांसारिक सुख देता है पर यदि भलाई फल की अनिच्छा से की जाए तो उसका फल मोक्ष है। अब मनुष्य को अधिकार है कि जिधर को चाहे अपनी गति बढ़ाए—

शरअ[1] का फरमान[2] है नेकी से सारे काम कर।
मत बदी[3] कर भूल से, मत किसी को बदनाम कर॥

अब आप शुभ कामों पर जो सुख का कारण हैं उन पर ध्यान दें—शुद्ध मति, सच्चा ज्ञान, सहनशीलता, होशियारी, सत्यता, पवित्रता, इन्द्रिय-दमन, मनोनिग्रह, सुख दुःख की अधिकता में निर्लेपता, बुरे कामों से भय, सत्कर्मों में निडरता, दया, आराम, सन्तोष, भक्ति, दान, शुभ-कामना, नशा से परहेज़ आदि अच्छी आदतें प्रभु की ओर ले जाती हैं। जिन खूबियों से सब को लाभ

---

१. नियम, धर्म। २. आज्ञा। ३. बुरे काम।

और संसार में शान्ति स्थापित हो वही ईश्वर की आज्ञा है, उनका पालन करना मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है और जिन मनुष्यों में ये गुण हों वे देवता कहलाते हैं। देवता का कोई विशेष प्रकार का शरीर नहीं होता—देवता तो गुणवान् को कहते हैं।

जिन बुरे कामों से मनुष्य स्वयं कष्ट उठाता और औरों को कष्ट पहुँचाता है वे सब दुष्टों के प्रिय दुर्गुण हैं जो निम्नलिखित हैं—अज्ञान, बुराई करना, कुविचार, कुकर्म, बुरी नीयत, बुरे दृश्य देखना, दुष्कर्म करना, स्वार्थता, आत्मश्लाघा, भीरुता, सुस्ती, नुक्ताचीनी, व्यर्थ क्रोध, धर्मान्धता, घमण्ड, अयोग्य इच्छा, लोभ, तृष्णा, बेहूदा बोलना, अनम्रता, बुरा स्वभाव, बुरे संग में प्रीति, सन्मार्ग में रुकावट—कहाँ तक कहें—विद्याभ्यास से घृणा, अज्ञानता और दुष्कर्मों में प्रवृत्ति उसका आदर्श हो जाता है, शैतान कोई विशेष प्रकार का देहधारी नहीं। जिसमें यह बुराइयाँ हों वही मनुष्य शैतान है।

इन दोषों में से बहुत से एक जैसे और एक ही अर्थ रखनेवाले जान पड़ते हैं, पर ऐसा नहीं है उनमें थोड़ा थोड़ा भेद है। जैसे तृष्णा व लोभ दोनों समान दीखते हैं पर उनके अर्थ में थोड़ा भेद अवश्य है, ऐसा ही सब जगह जान लें। ये सब बुरी या असभी आदतें किसी मनुष्य में एक ही समय प्रकट नहीं होतीं—समय आने पर अपने बल को बढ़ाती हैं। एक के प्रकाश में दूसरी दब जाती है, उनके बढ़ाव—घटाव को जाननेवाला मनुष्य सत्गुणों को उभार कर बुरी आदतों से अपना पीछा छुड़ा लेता है। इस नियम से ही मनुष्य सुख पाता है और प्रभु के समीप होता है। इस 'सत्य-मार्ग' पर न चलकर मनुष्य दुःख उठाता और बदनाम हो जाता है।

———

हँसी आती है मुझे, इस हजरते इनसान पर।
कारे बद[1] तो खुद करे, लानत करे शैतान पर॥

सब देखै पर आपनो, दोष न देखै कोई।
करे उजेरो दीप पै, तरे अँधेरा होई॥

भीखा भूखा कोई नहीं, सबकी गठड़ी लाल।
गांठ खोल नहीं देखते, तिस विध भये कंगाल॥

उम्रे दराज[2] मांग के लाये थे चार दिन।
दो आरजू मे कट गये दो इन्तजार में॥

१. दुष्ट कर्म। २दीर्घ आयु।

उपासनाकांड

मनुष्य बिना अहंकार के रहे। सत्कर्म के करने से मनुष्य को जो अभिमान-सा होता है, उसका नाम अहंकार है—संस्कृत भाषा में इसे अहंता (अहं भाव) अथवा 'मम-ता' कहा है। कोई भी सत्कर्म अहंकार के साथ मिलकर अपने असली स्वरूप में नहीं रहता परन्तु वह किया हुआ कर्म न किए के तुल्य हो जाता है। विद्वानों ने इस दोष को दूर करने के लिए बड़े सुन्दर उपदेश दिये हैं—उनका वचन है कि यदि बाएँ हाथ से कोई शुभ काम किया जावे तो उसका ज्ञान दाएँ हाथ को भी न हो। यदि मस्तिष्क किसी के साथ भला करे तो मन उससे बेखबर रहे—ये वचन मनुष्य को इस बुरी आदत (अहंकार) को छुड़ाने के लिए काफ़ी हैं। मनुष्य से यदि कोई काम अच्छा हो जाता है, तो वह अपनी प्रशंसा सुनने के लिए हर ओर कान लगाए रखता है, यदि कोई उसकी बड़ाई न करे तो फिर विवश होकर लोगों के सामने अपनी प्रशंसा स्वयं ही करने लग जाता है। यह एक ऐसा कड़ा बन्धन है, ऐसी कड़ी ज़ंजीर है कि मनुष्य का इससे स्वतंत्र होना बड़ा कठिन है। अपनी प्रशंसा चाहना अपने आप एक बड़ा भारी पाप है। इसके प्रभाव से रसायन भी निष्फल हो जाता है।

बीज अपने को छुपाता है तो वृक्ष पैदा होता है और जो बीज बाहर पड़ा रहता है, वह बीज या तो पददलित हो जाता है, या उसे पशु-पक्षी खा जाते हैं इसको संस्कृत भाषा में निष्काम कर्म कहा गया है। प्रभु-भक्तों के मत में इसे नाश होने वाला लिखा है। जैसे धान के ऊपर के छिलके को अलग कर देने से फिर वह खाने के काम तो आता है परन्तु आगे उत्पत्ति करने के योग्य नहीं रहता। सत्य कर्म के साथ प्रशंसा का लगा हुआ छिलका मनुष्य को संसार में बार-बार लाने का कारण बनता ही रहता है, इसको दूर कर देने से नाशवान नाश हो जाता है और शेष संसार में रह जाते हैं।

प्रभु भक्त इस बात को जान कर कर्म करते हैं। और सत्य पथ में जा लीन होते हैं। और फिर साक्षात्कार में जाकर आराम पाते हैं। इसलिये अपनी प्रशंसा आप करना भारी भूल है। लिखा है—

तारीफ अपनी आप मत करना कभी तू भूल कर,
ऐब अपना देख, ऐबे गैर पर मत कर नज़र।

जो मनुष्य इस बुरी आदत वाला है, वह अँधेरे में है। उच्च से उच्च मनुष्य भी अपनी प्रशंसा करने से छोटा और पवित्र होने पर भी खोटा हो जाता है। यह एक प्रकार का पाप है जो मनुष्य में परदोष निकालने का स्वभाव बढ़ाता है। और संसार में उसको नाकारा बनाता है। स्वार्थी पुरुष अच्छे मनुष्यों के संग से घबराता है, और कोई विचारशील मनुष्य उसको समीप नहीं आने देता। स्वार्थता सत्य पथ से हटाकर कुमार्ग पर चलाती है, और फिर दु:ख को समीप लाती है। बुद्धिमान मनुष्य वह है जो अपने दुर्गुणों पर ध्यान रखे और दूसरे के दुर्गुणों की पड़ताल न करे।

स्वार्थ से काम सारे दुनिया में हैं बिगड़ जाते
गुप्त कहां वह भेद जिसे सभा में हैं सुनाते।

स्वार्थ से सब काम बिगड़ जाते हैं, इससे चोट खाकर फिर वे बनने में नहीं आते जैसे किसी भेद को जन साधारण की सभा में सुनाकर यह बताना कि यह गुप्त भेद है, किसी से मत कहना, इस वचन से लोगों को हँसना और अपने को मूर्ख बनाना है। जो मनुष्य स्वार्थी हो जाता है, वह स्वयं अपने आप को धोखा देता है, और वह शुभ आचरण को बेचकर दुराचरण को मोल लेता है। इससे सुख-दुख में समभाव बना रहता है और पद-पद पर कष्ट आते हैं। यह स्वार्थ एक बला है जो शरारत को जगाती है, जो कभी दूर नहीं होती। स्वार्थता एक आत्मिक व्याधि है जिसके साथ असत्य बोलना भी शामिल है। स्वार्थ को पूरा करने के लिए झूठ और धोखा देना भी उसका स्वभाव हो जाता है—

हुआ दिल जो आलूदा[1] हिरसो हवा[2] से
नहीं चमकता फिर वह नूरेखुदा[3] से।

प्रभु से मिलाप तो मनुष्य को प्राप्त ही है और यह सदा उसके समीप है। व्याप्य वस्तु व्यापक से भिन्न नहीं हो सकती। केन्द्र और घेरे का सम्बन्ध सदा से है। अनुचित सांसारिक विचार मनुष्य के चित्त को हर समय परेशान करके उसकी पवित्रता को तृष्णा से बिगाड़ देते हैं। इसलिए बुरे काम की जिम्मेदारी से बचने के लिए जीवन के कार्य-क्रम को सत्य तथा उचित प्रकार से बनाना आवश्यक है। मन की शुद्धता से जो पुरुष प्रभु के दर्शन की चेष्टा करता है। वह भूल पर है। जैसे र के आगे व न लिखा जाये तब तक ख नहीं हो सकता बस, जब तक मन शुद्ध न हो प्रभु-प्राप्ति नहीं होती। फिर अन्त:करण प्रकाशित होकर प्रभुदर्शन से स्वयंमेव आह्लादित हो जाता है। मन की शुद्धता के बिना प्रभु-प्राप्ति के लिये मनुष्य जिस प्रकार की चेष्टा करता है, वह सब

---

१. भरा हुआ। २. तृष्णा। ३. प्रभु की ज्योति।

व्यर्थ जाती है। [illegible] की [illegible] को दूर करके, परमेश्वर प्राप्ति के योग्य बना देती है। यदि मनुष्य इस अवस्था को ठीक बना ले, तो ज्ञान-पथ की ओर उसका पग बढ़ सकता है, इसके बिना नहीं इसलिए, प्रभु-भक्तों का वचन है—

दिलबर[1] तेरा. तेरे आगे खड़ा है,
मगर नुक्स[2] तेरी नज़र[3] में पड़ा है।

जिस की खोज में लोग हैरान व परेशान हैं वह तो सामने खड़ा है। परन्तु इसको इन बाहरी आँखों से देखना चाहते हैं। उनकी आँखों से जो वस्तुएँ दीखती हैं, वे सब महसूस की जाती हैं, परन्तु परमात्मा अंगों से परे है। इस लिए वह किसी भी अंग से मालूम नहीं हो सकता है। ठीक मस्तिष्क का दूसरा नाम ज्ञान है। प्रभु-भक्त अपने अपने अनुभव से उसको देख सकते हैं। परन्तु उसको संसार के झूठे प्रेम ने बुरा बना दिया है जब तक यह बुराई दूर न की जाय तब तक उसका दर्शन कठिन है। जैसे कि आँख से सुनने का, कान से देखने का कार्य कठिन है। इस लिये प्रभु-भक्त मन की शुद्धि के लिए ठीक यत्न करता है। उन ही पुस्तकों का पठन पाठन करता है जिसमें यह विषय हो। उन मनुष्यों की संगति में जाना पसन्द करता है, जो उसमें दक्ष हैं। संसार का कोई भी ऐसा कार्य जो इस मार्ग में रुकावट डाले, वह नहीं करता है। यह वह उपाय है जिससे लोक और परलोक दोनों सुधर जाते हैं।

जब शत सहस्र इच्छाओं से सब हृदय कलुषित होवे,
फिर कहां प्रभु की ज्योति से अन्तर आलोकित होवे।

इच्छाओं का बढ़ते जाना हृदय में एकाग्रता उत्पन्न नहीं होने देता। अभिलाषा हृदय रूपी सागर में एक लहर सी उठाती है, फिर उससे दूसरी तीसरी लहर स्वयमेव बनती जाती है—इस अवस्था में हृदय में मैल बढ़ता जाता है। यह बार बार जीवन और मृत्यु की आफत को साथ लाती है, इससे पीछा छुड़ाना ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य है। परन्तु हरएक विचार की यहाँ पहुँच नहीं, अनुचित इच्छा से हृदय की शुद्धता नहीं, दोष-युक्त स्वभाव को दूर करनेवाली पुण्य कमाई नहीं। परन्तु जो अचानक के प्रेमी हैं, जो इस गूढ़ विषय को हल करने के योग्य हैं, वे सदा कम होते हैं, हर कोई इस पथ का पथिक नहीं। जिसके पूर्व शुभ कर्म सहायक हों, वर्तमान का पुरुषार्थ ठीक प्रकार से हो और प्रभु की कृपा सहायता हो, वह इस मार्ग पर चल सकता है और वह निश्चय भाग्यवान् है, जिसको योग्य पथ-प्रदर्शक मिले। परन्तु आज कल योगियों की, गुरुओं की और गुरु-मंत्रों की बड़ी ही चरचा हो रही हैं; इसके पीछे संसार की एक भारी संख्या अपनी सुध-बुध खो रही है। बड़ी ही

---

१. प्रियतम। २. दोष। ३. दृष्टि।

विचित्र बात है कि जो चीज़ हर अवस्था में कम होनी चाहिए, जिसकी कमी ही सुन्दरता की द्योतक है, जिसकी अधिकता से प्रकृति भी डरती है, मनुष्य अपनी अधूरी चेष्टा से यदि इसी ओर प्रयत्नशील हो तो सिवा बुरे परिणाम के और क्या हो सकता है ? प्रत्येक संप्रदायवालों ने अपने शिष्यवर्ग को बढ़ाना और उन्हें अपने सिद्धान्त का अन्ध-विश्वासी बनाना ही अपना विशेष कर्त्तव्य जान लिया है। भारतवर्ष इस बात का दीवाना है, इसी लिए तो इसको न कोई खड़े होने का स्थान है, और न कोई ठहरने का ठिकाना। कितनी भूल है, कितना अन्ध-विश्वास है कि गुरु को परमेश्वर से ऊँचा स्थान दिया जाए। इससे प्रकट है कि यह देश सत्य-मार्ग पर आरूढ़ नहीं। ऐसी अनुचित चेष्टा तो हृदय की शुद्धता प्रकट नहीं करती, परन्तु भूल को जताती है। विद्वानों का तो कथन है—

ज़िन्दगी को रास्ती[1] से तू गुज़ार,
कर्म फल से फिर रहेगा सुबकसार[2]।

मनुष्य को चाहिए कि वह अपने जीवन को सत्य-मार्ग पर ही चलकर व्यतीत करे और बनी हुई बात को अपने हाथ से न बिगाड़े। यह नियम कर्म के फल से मुक्त होने का है। मनुष्य बुरे कार्य के बोझ से हल्का हो जाता है। अन्तः-करण की प्रवृत्ति विश्व-प्रेम में झुक जाती है, फिर सत्कर्मों से मेल व दुष्कर्मों से वैर हो जाता है। सुख में उसी प्रभु का धन्यवाद और दुःख में शान्ति अनु-भव करने का स्वभाव हो जाता है। फिर जीवन में न तो अधिक आनन्द और न मृत्यु से अधिक घबराहट होती है। हरएक को सुखी देखकर खुश होना और दुःख में हाथ बटाना उसका स्वभाव हो जाता है। इन नियमों के पालन करने से मनुष्य में मनुष्यता आ जाती है, यदि ऐसा न हो तो लोभ-लालच आदि के प्रभाव से हृदय घबराता है। मनुष्य को सांसारिक करोबार में सच्चा रहना चाहिए और कभी भी मुख से झूठ या कटु वचन न कहना चाहिए। व्यवहार और व्यापार में नेकी से काम करना और धोखा-देही से डरना चाहिए, इससे मान-मर्यादा और शुभ कमाई प्राप्त होती है।

निश्चय से और विचारशील की संगति से आत्मा अमर हो जाता है। यह विचार बहुत अच्छा है। जिसके अनुसार निश्चय करने से परमात्मा का मिलाप होता है। कामवासना की अधिकता से डरना, गृहस्थ के नियमों को भली प्रकार से पालना, लोभ और इच्छाओं से पराजित न होकर इस पर विजय पाना यह मनुष्य का पूरा कर्त्तव्य है। इस कर्तव्य को पूरा करते रहना मनुष्य को बुद्धिमान बनाता और उसको कभी भी बेचैनी में नहीं ले जाता है। इस प्रकार से जीवन बिताना ठीक है। जो इस पर आचरण करता है, वह ही पूरा मनुष्य है। जो इन नियमों का पालन नहीं करता, वह चाहे किसी का गुरु हो

१. सत्यता। २. बरी, मुक्त।

या शिष्य, वह गँवार है। जाँच करने से यह प्रमाणित हो चुका है कि जब तक मन अनुचित इच्छाओं से बरी न हो, तब तक भलाई की लता कैसे हरी हो? वह मनुष्य इस पथ में कैसे गति करेगा, जिसके नेत्रों में मनुष्यपूजा की धूल पड़ी हो। मनुष्य को परमेश्वर से अधिक मानना भलाई को बेचकर बुराई को मोल लेना है, जो ऐसा करते हैं वह सच्चाई से घबराते हैं, और झूठ के समीप होते जाते हैं। गुरु तो अपनी चतुरता से माल उड़ाने लगे और शिष्य-जन धोखे में आने लगे। कैसी बात है जिसका न मोल है और न पता है केवल बहम-परस्ती है, जिससे मनुष्य-समाज पर बड़ा ही आघात है। हाँ, यह सत्य है, इस काम को वही कर सकता है जो संसार को पढ़ाने और दुनिया से कमाने की अक्ल रखता हो। हरएक इस विद्या का प्रवीण नहीं, इस मनुष्य-पूजा से तो यह प्रगट है—

भूल कर हमने खुदा को कैसा अंधा किया,
अपने घर के बीच में आप ही को गुम किया।

मेरे मित्र! मनुष्य-पूजा प्रभु-पूजा के उच्च नियम को मनुष्य के दिलों से दूर हटा कर उनको कंगाल बना देती है। यह ऐसी भूल है जैसे कि जिह्वा और कान रखनेवाला खुद को गूँगा और बहरा बना दे या अपने ही घर में घर स्वामी गुम हो जाये। ऐसी बातों का बनाना केवल अपनी भूल पर लोगों को हँसाना है। जो जिसके योग्य हो उसको वैसा समझना जिसकी मनोवृत्ति संसार के उपकार में हो, उसका मान करना उसके उपकार को न भूलना भला ही है, मगर उसको भूल जाना चाहिये। यह जो कुछ कहा गया है उपासना की सीढ़ी के विपरीत होने से कहा है। यह तो मनुष्य के स्वभाव को शुभ बनाकर परमात्मा की ओर, जो सर्व भलाइयों का केन्द्र है, ले जाती है। इसके बिना प्राप्त किये साक्षात्कार की सीढ़ी किसी को नहीं मिलती है। उपासना की रीति बुरे रास्ते पर चलनेवाले भूले दिल को जो इसका शत्रु और बुराई चाहनेवाला है, बचाती है। इसके सहारे ही अगर मनुष्य में बनावट का स्वभाव न हो, दिल पर काबू हो जाता है। बस, इसके जीतने से जग जीता जाता है। इशारे पर दुनिया के सब विद्वान सहमत हैं, यही एक बात है कि जिस पर चलने से मनुष्य संसार के बंधन से मुक्त होकर मुक्ति को प्राप्त करके सदा के लिए प्रसन्नचित्त हो जाता है। इस काम के करने को इस नियम पर कटिबद्ध होना चाहिए जिससे आगे-आगे आत्मा की शक्ति बढ़ती जाये, और सांसारिक मोह के जंजाल से कमजोरी सामने न आये, वह यह है—

आँख कान मुँह बन्द कर नाम निरंजन ले,
अंदर के पट तब खुलें बाहर के पट दे।

देखने के योग्य वस्तु को देखना और न देखने के योग्य को न देखना

आँख को बन्द करना है। सुनने के योग्य शब्दों को सुनना और न सुनने के योग्य शब्दों को न सुनना कान को बन्द करना है। फिज़ूल बातों से जिह्वा को रोकना और शुभ और हित की बातों का करना जिह्वा को बन्द करना है। इस अमल के दृढ़ हो जाने से प्रभु-की शर्त है कि अगर आत्म-साक्षात्कार और प्रभु-दर्शन न हो तो मुझे झूठा समझो मेरा उपहास करो। यह अमल बार बार परमात्मा के गुणों के प्रगट होने में उसके प्यार में बड़ा ही सहायक है। मगर आजकल इस पर अमल ग़लत तरीके से हो रहा है। घंटा दो घंटा के लिए आँख कान मुख को बंद करना ही शुभ काम मान लिया गया है। यह किसी सीमा तक साधन के रूप में ठीक तो हो सकता है अगर इससे ठीक रास्ता खुल जाय, मगर यह नहीं होता है। असली नियम जिसमें भूल नहीं है, वह ऊपर लिखा गया है कि आँख, कान और जिह्वा का ठीक रास्ते में जाना सिद्धि का कारण तो हो सकता है इसके बिना दूसरा कोई उपाय नहीं। अंगों के द्वारा बाहरी धूल जो दुनियावी असर लेकर अन्तःकरण में जाम होता है, वही उसके जीवन को बर्बाद करने में बल पकड़ लेता है इन इन्द्रियों और संस्कारों के दोष से दूषित होकर मनुष्य जानता हुआ न जानने और सुनता हुआ न सुननेवालों के बराबर होता है। दुनिया में देखा जाता है, सही है ग़लत नहीं हो सकता है। दिखावटी अमल करने वाले जो भीतरी शक्ति को नहीं सँभालते हैं, उनका स्वभाव ज्यादातर कठोर देखा गया है और बाहरी आडम्बर में फँस कर कुछ अभिमान और कुछ अपने बड़प्पन की स्तुति सदा करते ही रहते हैं, इसलिए यह सारी बनावट मतलब निकालने के लिए प्रमाणित होती है और जो भले लोग ठीक रास्ते पर चल रहे हैं वह किधर से आते हैं और कहाँ को जाते हैं। कुछ पता नहीं चलता है। वह संसार को कहाँ बढ़ाते हैं, फरक है दुनिया के चाहनेवालों का, इस रास्ते में कदम नहीं बढ़ता है और अगर दिखावट के लिए चले तो कदम-कदम पर गिर पड़ता है, इसलिए उपासना मनुष्य की अन्दर की सफाई को ठीक करके असली जगह तक पहुँचाती और परमात्मा से मिलाती है।

सुख को कहां है ढूंढता, बाहर नहीं है सुख कहीं।
तू आप सुख का सिन्धु है, इसकी खबर तुझ को नहीं॥

ज्ञान कांड

ज्ञान यह कहता है कि मनुष्य को अपने आपको नाश कर देना चाहिए। यह एक ऐसा शब्द है कि जिसको सुनने से मनुष्य घबरा जाता है और कुछ समझ न आने से मुरझा जाता है। फिर कुछ करते बन नहीं पड़ता। न चलने की ताकत और न रहने की जगह का दृष्टान्त सामने आता है। परन्तु ऐसा नहीं। यह प्रभु-भक्तों का केवल एक इशारा है। इसको ही गीता में कर्म-संन्यास या अकर्म के नाम से कहा है। यह एक ऐसा अद्‌भुत् तरीका है कि मनुष्य कर्म तो करता है, परन्तु उसके बन्धन में नहीं आता है। कर्म होना और कर्म करने-वाले का उसके परिणाम से मुक्त रहना यह कितनी बुद्धिमत्ता का काम है। यह मनुष्य की विचारधारा के बहाव में कितनी तेज़ी है। हर एक मनुष्य इस भेद से परिचित नहीं हो सकता। अज्ञानता के अन्धकार को अपने हृदय से नहीं धो सकता है। यह प्रभु-भक्तों का एक भेद है। दुनिया का सुख उसके दिल में नहीं समाता है।

जो प्रभु-प्रेमी है, संसार उसको पागल कहता है। परन्तु उसका मन हर समय एकाग्र रहता है। संसारवालों की दृष्टि में वह नाश हो चुका है परन्तु वास्तव में वह सब से सुखी है। न किसी की कुछ सुनता है, और न किसी को कुछ कहता है। वह सदा अपनी ही उधेड़-बुन में लगा रहता है। उसके आगे मुक्ति खड़ी हँसती है। वह कभी रोता और कभी हँसता और कभी विनय करता है। ज्ञात नहीं कि वह इस स्थिति में किसको याद करता है। जब मनुष्य अपने सच्चे उद्देश्य की ओर जाता है तो इसके बदले में फल भी पाता है। जो मनुष्य अपने व्यक्तित्व को मिटाता है, वह उसके बदले में अमर हो जाता है। सबके ऐसे भाग्य कहाँ जो इस अवस्था को प्राप्त हों, हर एक के ऐसे भाग्य कहां जो इस मार्ग में जायें। अपने आपको मिटाना यह हरएक के बस की बात नहीं। इससे मनुष्य की सुध-सुध बिगड़ती, और हरएक प्रकार के विचार बिखरते हैं। जो इसके शौकीन हैं, वह ही संसार के झगड़े मिटाने में योग्य हैं। उनको न बुद्धि है और न इच्छा है कि संसार को रिझावें। उनका मन पवित्र और अपने सुख के लिये इसको अपने जाल में फँसावें। उनका मन पवित्र है। उनके सामने केवल संसार के रचने वाले का चित्र है। केवल

इसी से लगाव, न किसी से धोका है, और न किसी से दग़ा। वह न किसी के आगे हाथ फैलाते, और न घर घर जाकर ठोकरें खाते हैं। संसार वालों का जिस वस्तु से प्रेम है उनकी दृष्टि में वह केवल मिट्टी के समान है। संसारवाले संसार को मर कर छोड़ते हैं, परन्तु यह जीते जी ही इस संसार को मिथ्या जानकर अपना सम्बन्ध तोड़ देते हैं। सच है, जिसके हृदय से अज्ञानता का अन्धकार दूर हो जाता है, वह इस अवस्था में जाने के लिए विवश हो जाते हैं, किसी विद्वान् ने कहा है—

जो कोई बेनिशाँ के पीछे जावे।
करे गुम आप को तब उसको पावे॥

निशान के साथ बेनिशान की तलाश नहीं होती है। जिसके कर्म खोटे हैं वह संसार में किस प्रकार सुखी रहेगा? ऐसे मनुष्य से संसार को कोई लाभ नहीं जिसके विचार खोटे हैं। खोये को पाने के लिए अपने आप को खोना होता है। वही उसको प्राप्त कर सकता है, जो उसकी जुदाई में हर समय तड़पता है। न सोता है और न जागता है। इस स्थान पर पहुंचकर मनुष्य की दृष्टि में हर वस्तु एक-सी हो जाती है। हर मनुष्य एक-सा है। कोई राजा हो या रंक। वह ऐसी बुद्धि के प्रभाव में नहीं आता, जो एक को दूसरे से पृथक् करती हो। जब अन्धकार का पर्दा उठ जाए, तब वह सांसारिक वस्तुओं से कैसे प्रेम बढ़ावे? वह इस शरीर को नाशवान् समझता है और इसके अधिक देर तक संसार में रहने से दुःख मानता है।

जैसे—

है रुकावट तू ही उसके दरमियां।
वरना वह जाहिर यहाँ और है वहाँ॥

ठीक है, जब प्रेमी समीप होता है, तब फिर उसकी जुदाई बहुत ही दुःखदाई हो जाती है। उस समय जो वस्तु रास्ते में हो, वह रुकावट डालती है, इससे बड़ी ही व्याकुलता बढ़ जाती है। जब तक वह रुकावट दूर न हो जाय प्रेमी मुख से परदा न उठा दे, मन में शान्ति नहीं आती।

यह नियम साधारण बातों में कार्य करता हुआ दिखाई देता है। विद्यार्थी पाठशाला और कालेजों में विद्या पढ़ते हैं। परीक्षा का समय जितना समीप आता जाता है, उतना ही उनके मन का लगाव उधर बढ़ता जाता है। वह प्रत्येक कार्य से पृथक् हो कर केवल उसी की रचना में मगन रहते हैं। किसी उत्सव या प्रदर्शनी में जो तीन-चार मील की दूरी पर हो रही है, लोग देखने के लिये जाते हैं। जितना उसके समीप होते जाते हैं, उतना ही उनकी चाल तेज होती जाती है और जब वह दृश्य सामने आ जाता है तो उस थोड़े से

मार्ग को दौड़ कर समाप्त करते हैं। बस, जितना किसी के साथ प्रेम होगा, उतना ही यह नियम उस पर लागू होगा।

प्रभु-भक्त ने अपने स्वभाव को सांसारिक प्रेम से हटा लिया, और इस संसार को नाशवान् जान कर इससे न्यारा हो गया। मन की शुद्धि ने उसको मार्ग दिखाया, घर घर में भटकना छोड़कर केवल एक सच्चे प्रभु से भिक्षा की याचना की। पूर्व संचित कर्मों ने भला किया, एकान्त से खुशी को जगा दिया महात्माओं के सत्संग और अच्छी संगति ने ज्ञान-प्रकाश को जगा दिया। कहाँ तक कहें, सब झगड़ों को मिटा दिया। प्रारब्ध से मिला हुआ यह मनुष्य चोला केवल परदा का काम कर रहा है और उधर प्रभु-भक्त उस परम-पिता परमात्मा की जुदाई में जीते जी मर रहा है। इसलिये वह मृत्यु से नहीं घबराता। वह उसको उपकारी जानकर भय नहीं खाता। उसको मृत्यु से प्रेम नहीं है इस शरीर के जाने में प्रेमी का साक्षात्कार है। प्रभु-भक्त मृत्यु का सत्कार करता है। इसको स्वागत करने के लिये चाव से आगे बढ़ता है कि आकर इस चोले के परदे को हटा दे, मुझको स्वतन्त्र कर दे। सांसारिक मनुष्यों के पास तेरा जाना उनके लिये अन्याय है और मेरे पास तेरा आना तेरी कृपा है। ओ प्रसन्न करने वाली आ, मेरे पास आ! इसलिये सच कहा है— परमात्मा हर स्थान के अन्दर- बाहिर, यहाँ-वहाँ हर स्थान पर हर रंग में प्रकाशमान है। परन्तु यह शरीर राह में रुकावट है। यही कारण है कि संन्यासी मृत्यु से घबराता नहीं। मनु जी महाराज ने ऐसा कहा है कि संन्यासी मृत्यु की इस प्रकार प्रतीक्षा करे कि जैसे कोई मजदूर (बेगारी) अपने सिर से बोझ को (अपने स्थान पर जाकर) लापरवाही से फेंक देता है, और फिर बोझ के भार से सदा के लिये मुक्त हो जाता है। यह सचाई है—

नजदीक से नजदीक है और दूर से है दूरतर.
चश्मे दिल को खोलकर देखो वह आता है नजर।

परमात्मा सबका अन्तरात्मा, समीप से समीप और दूर से दूर है कैसी बात है जो समझ में नहीं आती। यहाँ तो बुद्धिमानों की बुद्धि भी मत खाती और आगे जाने से घबराती है। ऐसी वस्तु के लिये जिसमें हठ पाया जाय, प्रयत्न करना निष्फल है क्योंकि यह विचार ही विचार है क्या कभी किसी का इससे मिलाप भी होता है? इस प्रश्न को सुलझाना कठिन है। ऐसा नहीं, बाहरी कानों से सुना और बाहरी आंखों से वह देखा नहीं जाता है। परन्तु मन के चक्षु से देखा जाता है। इसलिये बाहरी आंखों से दूर और अन्दर की आंखों के समीप हो जाता है और देखने में नहीं आता है। यह कहा गया है कि परमेश्वर में जगह या समय का भेद नहीं है। कारण यह है कि व्यापक वस्तु समय या स्थान की कैद में नहीं आ सकती है। और व्याप्य वस्तु व्यापक से

कभी भी जुदा नहीं हो सकती। ऐसी अवस्था में फिर वह नजर क्यों नहीं आता ? इसका कारण विचार-भेद है। समय और स्थान का प्रभाव सांसारिक वस्तुओं पर तो हो सकता है, परन्तु उस अविनाशी परम-पिता परमात्मा पर इन चीजों का अधिकार नहीं है। वह हर समय और हर स्थान पर मौजूद है। परन्तु भेद तो विचारों का है। जब तक विचार पवित्र और उच्च न हों तब तक प्रभु से मिलाप असम्भव है। अतः यह मनुष्य की योग्यता पर निर्भर है कि वह विचारों को उच्च बनाए।

लोगों को परमात्मा के जानने में इस बात की बड़ी रुकावट है कि वह पहिले अपने आपको नहीं पहचानते हैं। जिस मनुष्य को अपने आपकी होश नहीं, वह परमात्मा को कब पा सकता है ? जो स्वयं मार्ग भूला हुआ है वह दूसरे को कब मार्ग दिखा सकता है ? कुछ ऐसी भूल हुई पड़ी है कि जो डाकू की तरह मार्ग को रोक कर खड़ी हुई है। आत्मा पास है परन्तु हम इसको दूर समझ रहे हैं। मनुष्य इस शरीर के चोले में प्रकाश से अपरिचित हो शरीर के किसी भाग को अपना मान ले। जब ड्राइवर को अपनी ही होश न हो, तो गाड़ी को भली प्रकार नहीं चला सकता। यह सत्य है कि जिसको अपना ही ज्ञान न हो वह परमात्मा को कैसे पहचान सकता है। आत्मा के ज्ञान के बाद परमेश्वर के जानने के लिये और कोई यत्न नहीं करना पड़ता—यह सिद्धान्त ठीक है। जो ज्ञान इसके दोष को दूर कर देता है, वह तत्काल ही परमात्मा के प्रकाश से इसको भरपूर कर देता है। जो अज्ञान अपने स्वरूप में बैठा हुआ है, ठीक प्रकार से पहिले उसको दूर करने का यत्न करना चाहिये। यह प्रभु-भक्तों का कहना ठीक है—

जो नाश से पहले नष्ट हुआ,
वह 'शेष' में मिलकर शेष हुआ।

यह कैसा वार्तालाप है, आनन्द का सच्चा चित्र है। कहने और सुनने में प्रेम का प्रकाश हो जाता है। अपने व्यक्तित्व का, जिसका कभी पतन नहीं होता, विकास होता है।

कैसा आश्चर्य है, जिसके जान लेने से संसार की हर एक चाल मात है—यह कैसा ऊँचा स्थान है, जिसका न कोई मकान और न कोई निशान है। यह एक ऐसी आनन्दमय अवस्था है, जहाँ न कोई दुःख और न काई गिरावट है। संसार वाले ऐसी बातें सुनकर ही सांसारिक व्यवहार करते हैं, परन्तु इस पर आचरण करते डरते हैं। आजकल ऐसी बातों का बड़ा ही मान है, उसकी दुकान खूब चल रही है जो चालाक है। परन्तु वह चालाकी व्यर्थ है जिसमें अन्तको दुःख है।

इसलिए हे मित्र ! यह अवसर बड़ा अच्छा है। जरा सावधान होकर

खड़ा होजा। बल और सच्चाई से, पूरे प्रयत्न से प्रतिबिम्ब के पीछे मत घूम, परन्तु असली वस्तु को ढूँढ फिर झूम झूम कर मचा दे धूम। इसलिए यह कहना सच है कि फूल बन कांटा न बन। मित्र बन, शत्रु न बन। जिसने मृत्यु से पहले अपने को नष्ट कर दिया है इसको फिर कहीं भी कष्ट, दुःख अथवा शोक नहीं होता। वह नाशवान् को नष्ट करके 'शेष' में जाकर 'शेष' हो गया है।

कर्म और फल के चक्र को तभी रोका जा सकता है जब मनुष्य कर्म तो करे परन्तु अपने आपको मध्य से हटा दे। अपने सत्कर्म और दूसरों के कुकर्म भूल जावे, यह कार्य कहने में तो सुगम पर आचरण करने में अति कठिन है परन्तु, इसके लिए भी एक उपाय है, यदि मनुष्य को लगन हैं तो आज नहीं तो कल प्राप्ति होगी ही। कारण यह है कि वह केवल भ्रम से निर्लज्ज हो रहा है। भ्रम के दूर होते ही सदा के लिये उससे निर्लज्जता दूर हो जाती है, इसलिए भ्रम का होना न होने के बराबर है—

प्रभु सब में सभी कुछ है प्रभु में।

मनुष्य में दोष है जो मिलाप नहीं होने देता। परमात्मा के प्रेम से, सत्संग से, उदारता से जब दोष दूर कर दिया जाता है, तब वियोग स्वयमेव दूर हो जाता है और हृदय की पवित्रता सम्मुख आती है।

हृदय आनन्द में डूब कर साक्षात्कार की मंजिल की ओर जाने को प्रेरित करता है—फिर तबीयत पीछे की ओर नहीं हटती। यह अवस्था सबको प्राप्त नहीं होती, जब जन्म-जन्मान्तर का क्रम समाप्त हो जाए, तब अंतिम जीवन में मनुष्य को यह ध्यान आता है। फिर—

हो गया आनन्द, दुनिया को रिझा कर क्यां करूं ?
दिल प्रकाशित हो तो दीपक राग गाकर क्या करूं ?
जल गया अज्ञान का वह जाल अग्नि-दान से।
खुद बुझी जाती हैं अब उसको बुझा कर क्या करूं ?

यह सब निश्चित ज्ञान से कहा गया है। साक्षात्कार में और ही गुल खिलता है—आगे देखिये—

सच्चे आत्मज्ञान बिन, दुःख नहीं कभी नसाय।
कोटि यतन करते रहो, तम बिन दीप न जाय॥

साक्षात्कारकांड

ध्यान उसका दिल में समाता नहीं।
सागर है, गागर में आता नहीं ॥

परमात्मा के गुण निराले हैं, गुण-गान करना सम्भव नहीं। वाक्-शक्ति इसकी व्याख्या करने में असफल रही है परन्तु ज्ञान और बुद्धि इतना बताते हैं कि कोई जगह ऐसी नहीं जो उससे खाली है। कोई उसका इकरार और कोई इन्कार करता है, फिर भी इकरार और इन्कार करने में हरएक उसमें विश्वास रखता है। हर प्राणी किसी न किसी हालत में उसके आगे प्रार्थी है।

कहीं भी जाओ पर वह मिलता नहीं, परन्तु विद्वानों की सभा में उसकी कहीं कहीं चर्चा सुनते हैं। हरएक उसको चाहता है गरीब हो या अमीर, महाराजा हो या फकीर, हर कोई उसका अभिलाषी है। और कोई अद्वितीय मनुष्य केवल तुझसे संयोग करने की इच्छा से घर-बार छोड़ जाता है, और कोई जंगल में जाकर समाधि लगाता है, परन्तु फिर भी तेरा जलवा (प्रकाश) नहीं दीखता।

ओ कृपालु ! हर मकान में होता हुआ भी तू लामकान (जिसका अपना कोई घर नहीं) हरएक वस्तु में अदृष्ट रूप में रहता है। कुल संसार तुझसे बेखबर परन्तु तू सबसे खबरदार है। इधर-उधर, ऊपर नीचे वर्तमान ह पर फिर भी तू गैर-हाजिर है—यह कैसा आश्चर्य है, जिसे समझना कठिन है। कोई रोता है, कोई टकटकी लगाए चुपचाप अपनी सुध-बुध खोता है—केवल इसी भेद को समझने के लिए, हे मित्र ! मैं पूछता हूँ—कुछ तो बतादे तू समीप है या दूर, नार है या नूर, तू शोक है या प्रसन्नता। तू किसी को अपने विछोह में सता रहा है और किसी को प्रेम से थपकियाँ देकर सुला रहा है। किसी पर दु:ख ढाना और किसी को कृपा-पात्र बनाना स्पष्ट प्रमाणित कररहा यह न्याय नहीं अन्याय है, शासन नहीं क्षमादान है, बस इस लाचार का रोना-धोना तेरे आगे इतना ही काफी है। व्यर्थ में किसी की परेशानी बढ़ाना ठीक नहीं, जरा परदा उठादे और अपना जलवा (प्रकाश) दिखादे तेरा कुछ बिगड़ेगा नहीं, बेचारे प्रसन्नचित्त और मालामाल हो जावेंगे। इस अवस्था में सनसनी-सी-छाई और धीमी-सी आवाज आई—

अपनी ज़िद को तू नहीं जब छोड़ता।
उल्फ़ते दुनिया से मुँह नहीं मोड़ता॥
अपनी दानाई[1] से मैं हूँ बाकमाल।
अपनी बेसमझी से तू है बाज़्वाल[2]॥

यह विद्वानों का वचन फिलासफी की बात है कि विवेक-बुद्धि उस ओर झुक जाती है और अविवेक-बुद्धि वाली प्रकृति इस रास्ता में रुक जाती है। इसलिए मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपनी प्रकृति को ठीक बनाने की कोशिश करे। यह एक ऐसा नेक कार्य है कि संसार का हर एक काम जो नेकी के आधार पर हो, वह सुन्दर व आनन्ददायक हो जाता है और प्रभु-मिलाप सुगम हो जाता है—

नहीं कहता हूं दुनिया से जुदा हो,
पर हर काम में यादे खुदा हो।

संसार से वैराग्य उस प्रभु की पहचान का ठीक रास्ता नहीं है। जो यह कहते हैं कि उसके मिलाप के लिए दुनिया छोड़ दो, वे असली भेद नहीं जानते। हाँ, यह ठीक है यदि किसी को एकान्त से प्रेम है अथवा किसी को कम बोलना पसन्द है तो बहुत न बोले—यह अच्छा गुण है मनुष्य की सोचने और समझने की ताकत को बढ़ाता है—यदि शौक हो।

बाह्य-संसार का यह शरीर एक छोटा-सा नक्शा है। कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जो संसार के बनाने में काम आई हो और वह इस शरीर में मौजूद न हो। इसलिए यह कहना ठीक है कि जब तक यह जिस्म साथ दे रहा है दुनियां का छोड़ना कठिन है। देखा जाता है कि जो ज़माने में आजकल वैरागी माने जाते हैं, वे दुनियादारों से अच्छा खाते और आराम पाते हैं। और उन लोगों को जो कई कठिनाइयों में फँसे हुए भी अपना गुजारा करते हैं—उन्हीं को डराकर अपनी पूजा कराते हैं। कैसी विचित्र अवस्था है—यह बेतरीके का एक बहाना है—केवल भारतवर्ष ही इस बात का दीवाना है। इसलिए देख लो इसका बिगड़ा हुआ ज़माना है।

बेकायदा दुनिया नहीं छोड़ी जा सकती। पैसा तो पास नहीं पर उसकी इच्छा बनी रहती है। वे धन को क्या छोड़ेंगे जिनसे धन की व्यर्थ इच्छा ही नहीं छूटती। इसी तरह हर एक ख़याल को समझ लेना चाहिए। ऐसी बेढंगी चाल से कौन नियत स्थान तक पहुंच सका है। इस प्रकार की ग़लत कोशिश करने से कोई नेक नतीजा निकल सकता है? कदापि नहीं! अधूरे उपदेशों से, प्रभावरहित शिक्षाओं से, उपाय-हीन चेष्टा से, स्वार्थता के बहकाने से, व्यर्थ झगड़े उठ जाने से स्पष्ट हो रहा है कि भारतवर्ष आज से नहीं

१. बुद्धिमत्ता। २. गिरावट और नाशवान्।

परन्तु बहुत समय से बिगड़ता ही चला आता है। यह बात सत्य है कोई किस्सा-कहानी नहीं, ज़माना गवाही दे रहा है—कोई बहाना नहीं। कोई भी काम छोटा हो या बड़ा, गुप्त हो या स्पष्ट—तब तक सुचारु रूप में न आएगा जब तक नेक हाथों में न जाएगा। दुनिया वाले बेमाल और उसे छोड़ने वाले मालामाल। हाँ, उनमें नेक मनुष्य भी मौजूद हैं, सबको एक-सा बताना तो पाप-मार्ग में जाना है। कुछ समझदार तो संसार का रुख देखकर उदासीन चुपचाप बैठे हैं और जो कुछ काम उनकी सहायता से हो रहा है, वे बहुत कम संख्या में है। यूँ तो मनुष्य भी काफी होता है जो शुद्ध आचरण वाला, झूठ और धोका-देही से दूर, लोक-सेवा में तत्पर, विद्या-युक्त और कर्त्तव्य में निपुण हो, ऐसा मनुष्य, यदि प्रभु की कृपा हो तो आए, जिसके सत्य उपदेशों से अज्ञान-रूपी अंधकार दूर हो जाए। इसी लिए विद्वान् ने ठीक कहा है कि दुनिया से अलहदा होने को मैं तुम्हें नहीं कहता। हाँ, उस काम को कर, फिर किसी से न डर। उस अविनाशी, सर्व-गुण-सम्पन्न, प्रकाशवान् सब से नज़दीक और सब से दूर, निराकार, सर्वशक्तिवान् सृष्टि के शासक जिसके बराबर या बढ़कर और कोई नहीं। यह सब उसके साधारण गुण हैं। वह सर्व-व्यापक और निर्लेप स्वयं कभी दृष्टिगोचर नहीं होता पर सब को देखने में समर्थ है। उसे भूलकर अपना जीवन मत बिता। स्वयं उस पर आचरण कर और दूसरों से करा जिसे उसकी याद है, वह सदा प्रसन्न चित्त है। जो उससे दूर है, वह सदा लाचार व मजबूर है। जिस चीज के लगाव में पड़कर मनुष्य उसे भूल जाता है, विद्वानों ने उसको दुनिया कहा है और वही पक्का दुनियादार है और दुनिया में रहता हुआ भी। जैसे कमल का पत्ता जल में रहता हुआ उसके प्रभाव से खाली रहता है। उसको नहीं भूलता है वही सच्चा वैरागी है। यह सच है संसार बेगाना है, ध्यानपूर्वक देख लो, झूठ नहीं, सत्य है, समय निकल जाता और फिर मनुष्य पछताता है पर हाथ कुछ नहीं आता। इस लिए किसी ने ठीक कहा है—'हथ कार वल, दिल यार वल'—इसका मतलब यह है कि हर एक काम को नेकी से निभाना और हर समय बुरे कामों से हटाना है। पर भारतवर्ष उससे उल्टा चला। ईश्वर का नाम जपता रहा और एक दूसरे को ठगता रहा जिसका परिणाम भी ठीक वैसा ही निकला है।

मनुष्य का दुष्कर्मों की ओर तभी झुकाव होता है जब वह अन्धकार में जाता है। प्रकाश में मनुष्य पाप से परहेज़ करता है। वह सर्व-शक्तिमान विश्वास और सत्य से भरपूर प्रकाश है। उसकी याद में मनुष्य 'सत्यमार्ग' को कभी नहीं छोड़ सकता। इस पर आचरण करने से पाप का विचार तक भी नहीं आता। हृदय में विश्वास हो जाता है अतः नेक कार्य करने का स्वभाव हो जाता है। उसकी भूल से मनुष्य को मौत सताती और उसको जीवन के

वास्तविक उद्देश्य से हटाती है। इसलिए उससे दिल लगाओ और कभी मत भुलाओ।

यदि दिल से कभी उसको न भूले,
फूलों की तरह फिर तू भी फूले।
जिसे देखता हूं मैं आँखें पसार,
दिलाती तेरी याद है परवरदिगार॥

क्या कहें कुछ कहा नहीं जाता है, मगर बिना कहे रहा भी नहीं जाता है। जबान में इतनी शक्ति नहीं जो उसका वर्णन कर सके। कोई बुद्धिमान हो तो इस समस्या को हल करे। आँखों में इतनी दृष्टि नहीं जो उसका दर्शन करें। मन में इतनी शुद्धता नहीं जो ध्यान बार बार करें। न संतोष व शान्ति है, पर हर समय उसी का चर्चा है। कोई कुछ बताता है, दूसरा कुछ सुनाता है—फिर किस पर विश्वास करें। यदि ध्यान से देखा जाए तो न कोई बेगाना है न अपना, न कोई कम न अधिक। यह एक भेद है जो कहने में आसान है पर इस पर आचरण करने के लिए हर एक परेशान। इस अवस्था पर पहुँचते ही अचेतन अवस्था है। एक विशेष प्रकार की खामोशी हो जाती है। मेरे मित्र! यही तो एक अदा है जो होती अदा नहीं। दृढ़ निश्चयवान् मंसूर सूली पर चढ़ता है पर मुँह पर उफ (आह) तक नहीं लाता। ऐ संसार! उधर मत जा, रोएगा। इधर लौट आ, आराम पाएगा। इस रास्ते में आम नहीं जाते हैं। जो जाते हैं फिर लौट कर कहाँ आते है, यहाँ चालाकी का काम नहीं, होशियारी का काम नहीं। यहाँ कहाँ होशियारी, यहाँ तो मिट्टी ही मिलती है और मिलती है ख़ाकसारी। यह सब होते हुए भी उसकी अदा लगती है प्यारी प्यारी। इस अवस्था में इक आवाज़ आई—होश में आ, मत घबरा! आगे बढ़, हरगिज न डर! इसी उधेड़बुन में कुछ हिम्मत बँधी वह गुप्त भेद जरा समझ में आया, ख़ुशी से राग गाने लगा, रोतों को हँसाने लगा। कभी गाता है—कहाँ जाऊँ? कहाँ जाऊँ मैं? भटक-भटक कर हार रहा—अब दिल में दर्शन पाऊँ मैं। और कभी सुनाता है—मैं तेरा हूँ, तू मुझे दिल से न भूल। इस तान को तोड़कर, प्रेम से हाथ जोड़कर कहने लगा कि अब उसके आगे न किसी प्रकार का झगड़ा ही है और न कोई बखेड़ा ही है। यह ठीक है कि लाजवाब बात का जवाब नहीं पर हाजिर जवाब होते हैं लाजवाब कहीं।

ओ भगवान्! इस बात को तो बता दे कि तूने निराकार होकर इस साकार संसार को कैसे बना दिया? लामकान होकर इस आश्चर्यकारी मकान को बनाकर अद्भुत प्रकार से कैसे सजा दिया? हम तो समझे बैठे थे कि इस बगीचे में न कोई बाग़बान न माली है, जब ध्यान से देखा तो पता लगा कि

माली भी है और उसके कर्त्तव्य भी हैं। उस निराकार का पता वही है जो अपने को मिटा कर बेनिशान बनाता है और उस लामकान को पाने के लिए अपना मकान छोड़ता है। उसकी याद में स्वयं को बहलाता है।

इस प्रकार की बातें बना सुना कर बड़े खुश हुए थे कि गुप्त भेद प्रकट हो गया, पर प्रकट होते ही फिर बयान से परे हो गया। नग्न है पर फिर भी परदानशीन कहलाता है। सामने खड़ा है पर दीखता नहीं। किसी तरह यह परदा राह से दूर हो। किससे पूछें ? कौन बतावेगा ? भेद किस तरह हाथ आवेगा ? क्या आज तक किसी ने जाना ही नहीं अथवा उसके जानने वाले होंगे कहीं ? सुना जाता है जो सुषुप्त अवस्था से चेतनता में आता है वह जान-बूझ कर अचेतन हो जाता है। यदि कोई उससे इस बात का ज़िकर करे तो वह चुप हो जाता है। अजब मुश्किल में जान आई, इस झंझट से कैसे छूट ? स्वयं अपनी मुसीबत को बुलाया, पीछे को भूल गए आगे का रास्ता हाथ न आया। इस अवस्था में कौन पथ-प्रदर्शक होगा जो रास्ता बताए और अपनी कृपा से इस उलझन से हमें छुड़ाए। दद-दिल से आँखें आँसुओं से भीग रहीं थीं—कोई नहीं जानता कि किसकी तलाश में यह दुःख उठा रहा है। जिधर देखता है, उसी ओर देखता रह जाता है। कोई कुछ कहे, वह हाँ या ना नहीं करता। जो लोग उसके पास आते हैं, भौंचक्के से रह जाते हैं। कोई चुप और कोई वहाँ ही सो जाते हैं। कोई धीमे कहता है कि इसको किसी दुःख ने सता दिया। किसी ने कहा किसी की याद में उसने खुद को भुला दिया। सूरत भोली भाली है, हृदय हर प्रकार की लाग-लगा-वट से खाली है। चाहे वह बैठा लोगों के बीच है, पर उसे यह पता नहीं वह कौन है और कहाँ है ? किसी ने कहा—देखो ! उसकी हर अदा निराली है, दूसरे ने कहा किसी ने इस पर जादू का प्रभाव डाला है। इसी बीच में एक प्रज्ञावान संन्यासी प्रकट होकर उधर आ निकला और उसकी उस अवस्था को देखकर कहने लगा—.

मेरी बात सुन तू उठाकर नजर,
भटकता क्यूँ फिरता इधर से उधर।

तेरे पास हरदम रहे तेरा प्यारा,
कभी भी वह तुझ से नहीं होता न्यारा ॥

संन्यासी की बातों में सत्य (सत्य का प्रभाव) था, दर्दे दिल के लिए राम बाण औषध थी। बेचैनी दूर हुई, प्रभु के साथ एकता का भाव प्रकट हुआ। विश्वास ने उसे सहारा दिया, सब लोग चलते बने और स्वतन्त्र व प्रसन्न-चित्त संन्यासी यह कहता हुआ लोप हो गया—

सिफत[१] तेरी क्या करे कोई, नहीं ताकत बयान[२],
बेनिशां[3] बेमिसाल[४] कहने पर भी तू है बेगुमान।

शोक, ऐसी बातें कौन सुनाता है ? न समझ ही काम करती है, न भेद ही हाथ आता है। जिसने समझा वह तो बता ही नहीं सकता, जिसने जाना वह समझा नहीं सकता। इससे तो यही प्रकट होता है कि जो उस को नहीं जानते, वही तो समझाते हैं और जो उसे जानते हैं, वे चुप रहते हैं।

मेरे मित्र ! यह कैसा गोरखधन्धा है, कैसा अजब फन्दा है, जिसका समझना कठिन जान पड़ता है, प्रयत्न करते थक गए। अब तबीयत घबराती है, व्याकुलता सताती है, पद-पद पर बेचैनी होती है। राग तो बहुत गाया, पर सब बेसुर और बेताल। चेष्टा व्यर्थ हुई और अन्त में मुँह की खाई। अब कहाँ जाएँ ? जान अजब मुश्किल में आई। कोई खबरदार हो तो खबर दे कि इस कठिनता से कैसे छुटकारा होगा ? सच है बिना पथ-प्रदर्शक के इस मार्ग पर चलना कठिन है। जो ज़िद से आगे बढ़ते हैं इस रास्ते में उनकी मिट्टी खराब होती है। इसलिए पथ-प्रदर्शक तो आवश्यक है पर वह बुद्धिमान और दूरदर्शी हो, सांसारिक इच्छाओं से परे हो, संसार-हित ही उसका जीवन और मृत्यु हो। वाह ! वाह ! इस बात को सुनकर कुछ तो सन्तोष हुआ और निश्चय हुआ कि ज्ञान-हीनों की बातें सुनने से कुछ लाभ नहीं। उच्च उच्चारण वाले विद्वानों के भाषण में प्रभाव-शक्ति होती है जो संसार के विषैले भावों को दूर करने में समर्थ हैं और अन्धकार के हटाने में सफल होती है। बस, उनके पास जाना जिनका न कोई अपना है न बेगाना, जिनका हृदय लाग-लगाव से परे है, जो न कभी किसी से डरते हैं और न सत्य कहने में बहाना ही करते हैं।

यह सब ठीक है, पर ऐसे शुद्ध आचरण वालों का मिलना ही कठिन है। मेरे मित्र ! उनकी खोज कर जिन के अन्तःकरण में पूरी लगन है। डाँवाडोल चित्त वालों को कहाँ इसका ख्याल है। हिम्मत न हारो, आगे बढ़ो, मंजिल कड़ी है, प्रेम की बाधा दुनियादारों के रास्ते में खड़ी है। जिस तरह मैदान से दिलावर का कदम कभी पीछे नहीं हटता, उसी तरह उस प्रभु के इच्छुक जिज्ञासु अपने निश्चय पर दृढ़ रहकर कभी दुनियावी प्रेम में नहीं फँसते— कदापि नहीं।

ऐसी अवस्था में पास ही एक कर्त्तव्य-क्षेत्र था, मानों कि वह पथ-प्रदर्शक के स्थान पर आगे ही खड़ा था। वह मस्तानी आवाज में कहने लगा—

१. गुण-गान। २. बताने की शक्ति। ३. निराकार। ४. अद्वितीय।

सुनो बात मेरी खबरदार होकर,
किसी को नहीं मिलता, हँस के न रोकर ।
तेरे पास हरदम रहे तेरा प्यारा,
हरगिज़ नहीं होता तुझ से वह न्यारा ।
मुहब्बत हो—दिल तेरा है उसका घर ।
न धन, बल वा दुःखों से आवे नजर ॥

ऐ मित्र ! प्रभु से मिलाप न निकट और न दूर है । तनिक प्रेम को जागृत कर, दिल से नफ़रत को दूर कर दो, मोह और द्वेष को परे करो और शुद्ध हृदय से सबसे मिलो ? लोक-सेवा में समय बिता और प्रभु के आदेश से सदा दूर मत हो । एक ही प्रभु के सब प्राणी हैं इस बात को जानते हुए कभी घमण्ड न करो, धोका व कपट छोड़कर क्रोध से अपना नाता तोड़ ले । ईमानदारी से धन कमा, नेकनीयती से उसे खा और सत्यमार्ग पर लगा । अच्छी संगत में रहो बुरी संगत कर के अपने को बुरा न करो । ऐशो आराम में वक्त न गँवा । मृत्यु अवश्यम्भावी है, उससे मत डर । वह प्रभु का आदेश है: इसे हृदय में स्मरण रखो । प्रसन्नचित्त रहने का स्वभाव बनाओ । अपने सत्कार्यों व धर्मनीति से औरों को प्रसन्न करो । जहाँ तक बने उस प्रभु का यश गा उसे धन्यवाद देना चाहिए । संसार की हर वस्तु नाशवान् है पर उसका नाम अंत तक रहता है । संसार भी नाशवान् है पर उसमें एक गुण अद्भुत है वह यह कि मनुष्य यदि विचारशील हो तो मृत्यु पर विजय पाता है । फिर न जीता है न मरता है अर्थात् अमर हो जाता है । बिन्दु का नदी में गिरना नाश और फिर नदी में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होना जीवन है । यह उधर को जाता है और वह इधर से आता है, एक मध्य में दोनों उपस्थित हैं । परन्तु इस भेद को वही जानते हैं जो बुद्धिमान् और योग्य हैं । इस सीढ़ी पर चलने के लिए अन्तः करण की शुद्धि की आवश्यकता है । वही आगे बढ़ता है जो बाहर की चमक-दमक से दूर रहता है ।

प्रातःकाल उठकर उस प्रभु को याद करो इस शुभ कर्म से सद् चित्त प्रसन्न हो कर दिल से दुई का पर्दा उठता है। प्रभु के समीप होने से ही उसके दर्शन होंगे और फिर सबसे प्रेम-भाव होगा । उस दशा में न कोई अपना है न बेगाना । यह एक गूढ़ रहस्य है—इससे आगे बल नहीं है और न ही कोई उपाय है । जो इस भेद को समझे, उसका इन सांसारिक झगड़ों से छुटकारा होता है ।

मान लिया कि ईश्वर-भक्ति की महिमा कहने सुनने से बाहिर है । तब भी कुछ बखान होना ही चाहिए, इससे प्रसन्नता होती है, यह सब जानते ही हैं ।

प्रभु एक है, इसके समान कोई नहीं है । मनुष्य को नाशवान् कहते हैं

और मनुष्य आकार वाला भी है, परन्तु वह निराकार—अजर, अमर और अनादि काल से है। उसने मनुष्य को बनाया, मनुष्यत्व दिया. सत्य मार्ग समझाया और कहा—हठ किसी से न करना, मत परस्पर लड़ना, सदैव बुरे काम से डरना।

कई बार लोग कहते हैं—क्या अजीब बात है, मनुष्य तो जिसे देखा सुना जाता है, कारोबार में रोज़ आता है वह तो, नाशवान् है और जिसको न कभी देखा और न सुना वह सदैव एक रस अमर है। वह बाहिर से किसी प्रकार भी नहीं जाना जाता और पहचाना जाता। कोई इसके बराबर हो तो समझा जाय। यदि इसमें रूप आदि गुण हों, तो ध्यान में लाया जाय। वह इन सब बातों से अलग है यही तो इसमें विशेष गुण है। वह हार और जीत से अलग है। आधार के प्रमाणित हो जाने से ऊपर और मध्य दोनों प्रमाणित हो जाते हैं, इस लिए ईश्वर तो सर्व-सृष्टि का आधार, शक्तिमान् और अमर है। सारी सृष्टि का प्रबन्ध करना नाशवान् को नष्ट और प्राचीन को स्थापित रखना उसके ही नियम अनुकूल है। वह सदैव जागृत अवस्था में सावधान एकरस रहता है, संसार के मनुष्य उसकी ही पूजा करते हैं, उसको सर्वव्यापक जानकर बुरे कर्मों का ध्यान और उनके करने से डरते हैं। विद्वान लोगों ने उसको ही अपना प्यारा और सहारा माना है। उसकी उपासना करना ही मोक्ष को पाना है। योग्य मनुष्यों ने जीवन और मृत्यु से स्वतन्त्र हो जाने का उपाय उसकी याद को ही बताया है स्वयं उस को ठीक समझकर दूसरों को समझाया है। परमात्मा के गुणों का ख्याल आते ही मनुष्य का पग सत्य मार्ग की ओर हो जाता है। यह कार्य मनुष्य को नेक बनाने में बड़ी सहायता पहुँचाता है। और सब की भलाई करने का ध्यान सामने आता है। सदैव उसकी याद से दिल अपने को सदा प्रसन्न पाता है। अतः कभी उसको भूलकर भी मत भूलो।

ईश्वर कैसा है, कहाँ है, और किस प्रकार का है ? इस समस्या के असली रूप को कोई नहीं जानता है, परन्तु हरएक मनुष्य अपनी बुद्धि के अनुसार उसे समझने की चेष्टा करता है। किसी ने उसको सर्व-व्यापक बतलाया, परन्तु फिर भी परिश्रम करने पर स्वयं उसका पता न पाया। किसी जगह जाओ, कहीं चक्कर लगाओ, उस की बातें सुनो और सुनाओ—परन्तु उसका भेद हाथ नहीं आता है, सुननेवालों ने क्या सुना, बताने वालों ने क्या बताया, ठीक दिल में नहीं समाता है। किसी ने उसको एक देश व्यापी माना है परन्तु वह देश अथवा स्थान कैसा है, कहाँ पर है इसको कोई न जान सका ? आज तक उसका पार किसी ने न पाया, किसी ने भगवान् की मूर्ति बना कर बड़ी धूमधाम से मन्दिर में बैठाया है, घण्टा-घड़ियाल बजा कर सुलाना, जगाना, नहलाना, भोग लगाना उसको ईश्वर मान कर प्रेम से सिर को झुकाना यह सब कुछ देखने में आता है पर इन सब बातों से मनुष्य का विचार साफ़ न होकर उलझता ही

जाता है। कोई इसी के वैराग्य में संसार को छोड़ जाता है और फिर कुछ समय के बाद संसार के अधीन नज़र आता है। कोई योगियों की खोज में फिर रहा है और कोई फ़क़ीरों की संगत में घिर रहा है। कोई अपने आप को 'अहंब्रह्म' कहता है, परन्तु उसकी शक्ति को अपने में नहीं देख पाता। कोई किसी स्थान को पवित्र जानकर उस जगह जाना पुण्य समझता है और कोई नदी में गोता लगाने को शुभ कर्म्म मानता है, कोई ईश्वर को मिलने के लिए दान करता है और कोई गुरु-मंत्र लेकर संसार सागर से तरना चाहता है। इस प्रकार झंझटों में पड़कर विना मतलब की बातचीत को बढ़ा कर ईश्वर-भक्ति का सच्चा उपाय हाथ से जाता रहा। कई प्रकार के सम्प्रदाय हो गये लोग ईश्वर को भूल कर मनुष्यों के पुजारी हो गये। एक ने दूसरे पर आघात किया, इस लिये सब के सब ईश्वर की पहचान से दूर हो गये। परन्तु जो लोग इन सम्प्रदायों के झगड़ों से दूर हो गये, उन सब की एक राय है, वे सब बुद्धिमान् हैं और सब इस रास्ते में दीवाने हैं। वे सच्चाई को जान कर मस्त हैं, बुद्धिमान और पूर्ण-विश्वासी हैं, बाकी सब अन्धविश्वासी हैं और मोह की दुनिया में फँसे हुए हैं।

जिस समय जीव को अपनी योग्यता का ज्ञान हो जाता है उसी समय उसे शान्ति प्राप्त होती है। जन्म-मरण और सांसारिक सुख-दुख की प्रदर्शनी दूर होकर आत्म-स्वरूप का उदय हो जाता है। दुई का परदा दूर हो जाता और अन्तःकरण शुद्ध होता है। अज्ञान का समूह ज्ञान-अग्नि से जल गया, जैसे कोई अग्नि में गिरते ही प्रकाश की अवस्था में बदल गया। जिधर देखता हूँ उसकी ही महिमा चारों ओर नजर आती है, इस अवस्था में न किसी से मित्रता है न वैर, जंगल और शहर सब एक समान हैं। यहाँ हर प्रकार से प्रसन्नता है—न कोई सताता है, न सताया जाता है। कैसा अच्छा भक्ति-मार्ग है जिसके सुनने सुनाने में भी आनन्द आता है। क्या अजीब बात है कि जिस के दर्शन के लिये मारे मारे फिरते हैं पता नहीं चलता कि वह किस ओर अदृश्य हो गया। दिल में ही उसका ज्ञान उदय हुआ, दिल में ही इसका ध्यान उत्पन्न हुआ फिर दिल ने ही उससे एक प्रश्न किया—हे ईश्वर! आपने मुझे अपना भेद बताया जोकि कठिनता से मिलता है अब फिर कठिनाई में फँसाना चाहते हैं। अब आप बतायें—कहाँ जाओगे, अपने आप को कहाँ छिपाओगे? प्रभो! आप सामनेखड़े हँसते हो, लोप होना चाहते हो, पर कहाँ जाओगे, कोई छिपने को जगहनहीं है यह साक्षात्कार तेरे सच्चे भक्त की भक्ति का फल है।

५

ईश्वरभक्ति में रुकावटें

जिस मनुष्य को अहंकार ने घेरा है, जिस के दिल में स्वार्थ का बखेड़ा है, वह रोगी है और जब तक बीमारी दूर होके वह स्वास्थ्यमय नहीं हो जाता तब तक प्रभु के दर्शन कठिन हैं। जितने भी उसको पाने के उपाय हैं उन में स्वार्थ लेश मात्र भी नहीं होना चाहिये। स्वार्थ एक प्रकार की ज़हरीली धातु है जो मनुष्य का आत्मिक शक्ति को नष्ट करके भले कामों के मार्ग में रुकावट डाल देती है। स्वार्थ भक्त को श्रद्धा-रहित बना देता है और यह हर एक को सत्यमार्ग से हटा देता है, इसने ही बाकाइदा को बेकाइदा बना दिया है। इसने ही सेवा के उत्तम नियम को निकृष्ट बना दिया है। स्वार्थ ही प्रेम को वैर में बदल देता है। जब मनुष्य बुरे कामों में पड़ जाता है फिर वह किसी की शिक्षा की बात भी नहीं सुनता, इसलिये खुदी (स्वार्थ) और खुदा (प्रभु) का वैर है और ऐसी दशा में ईश्वर को पाना बहुत कठिन है। जिसने अपने पुरुषार्थ और शुभविचारों से स्वार्थ को मिटा दिया उसने अज्ञान रूपी पर्दे को जो उसने अपनी मन्द-बुद्धि से खड़ा कर लिया था उठा दिया। जो प्रभु को जानता है वह न निर्धन है न धनवान है, वह न किसी से डरता है न किसी को डराता है। उसके पास प्रकाश है जिस से अश्रद्धा और अन्धविश्वास दूर ही रहता है वह प्रभु के समीप है और बुराई से दूर है। उसने सत्य-ज्ञान के विश्वास से उच्च सीढ़ी को प्राप्त किया है। उसने अपनी बुद्धिमता से भलाई और बुराई की पहचान करली है। सांसारिक लोभमाया में पड़ कर मनुष्य की दृष्टि कुछ बदल जाती है, फिर उसका मन दूसरों के रुख की परवाह नहीं करता और बुरे मनुष्यों की संगत करने लग जाता है। यह सत्य है कि माया अच्छे भले को अन्धा बना देती है और फिर उसको समझना निष्फल होता है और उसका सत्य-मार्ग पर आना असम्भव है।

लोभ ने ही संसार को झूठ बोलने की आदत डाली है। लोभ मनुष्य के मन को इस जाल में फँसाता है जैसे मक्खी शहद पर बैठते ही पंख मार कर फँस जाती है और फिर उसको स्वतंत्र होने की कोई सूरत नज़र नहीं आती। इसी प्रकार लोभ के बढ़ जाने से संसार दुःखों का घर बन जाता है। महाभारत के युद्ध में यही एक बात थी। उस समय के विद्वानों, नीतिवानों और बहादुरों की सब शक्ति लोभ में ही उलझी हुई थी।

सन्तोष को बड़ा कर लोभ से पीछा छुड़ा कर मनुष्य उच्च श्रेणी को प्राप्त करता है। बुद्धिमान् इसके लिये प्रयत्न करते हैं। इस जीवन के तत्त्व को समझ कर फिर वह बार-बार कहाँ मरते हैं ? दुनियाँ का लोभ मनुष्य को हेर-फेर के साथ सांसारिक बंधनों में ही लाता है और जो बुद्धिमान् इसको छोड़ देता है उसको मोक्ष प्राप्त होता है।

लोभ हर प्रकार के बुरे कामों का केन्द्र है। भले काम में रुकावट पैदा करना लोभी के बाएँ हाथ का खेल है। वह दूसरों को सुख-सम्पन्न देख कर दुःखी हो जाता है और दुःख में देख कर प्रसन्न होता है वही मनुष्य बुद्धिमान है जो इस बुरे स्वभाव से स्वतंत्र है, उसका कभी भी कहीं नाश अथवा बाल बाँका नहीं होता।

हिरस[1] को तू छोड़ कर दिल शाद[2] हो,
तोड़ इस जञ्जीर को आज़ाद हो।

ओं भद्रं नो अपि वातय मनः ॥ ऋग्वेद १० । २ । । १ ॥

सन्तुष्ट रह तू सर्वदा सन्तोष ही है मुख्य धन ॥
सन्तोष वाला ही सुखी है, हो भले ही नग्न तन ॥

ऐश्वर्य तीनों लोक के सन्तोष के सम हैं नहीं।
सन्तोष जिसके पास है, उस सम धनी जग में नही ॥

जैसी परे सो सहि रहे, कहि रहीम यह देह।
धरती पर ही परत सब शीत धाम अरु मेह ॥

जिंदगी की राह में इक और मंजिल तय हुई।
अब ज़रा तसकीने दिल का भी तो कुछ सामां करें ॥

हिरसे जर के खुशनुमा फंदों के बंधन तोड़ कर।
मुतमइन होकर जियें और सुर्खरू हाकर मरें ॥

१. लोभ। २. खुश।

परमात्म विचार

—१—

ईश्वर का भारत जो होता पुजारी ।
न भूखों से मरता न बनता भिखारी ।।
विद्या के प्रकाश में जाग जाता ।
अविद्या से फिर अपना पीछा छड़ाता ।।
ईश्वर के नियमों को उसने भुलाया ।
फिर अज्ञान ने उसको आकर सताया ।।
चला उल्टे राह सीधे को छोड़ कर ।
बना सारा फिर देश दुःखों का घर ।।
कभी ऐसी हालत न होती हमारी ।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी ।।

—२—

दुर्बल हो या कोई बलवान होवे ।
निर्गुण हो कोई या गुणवान होवे ।।
धनी कोई होवे या धन-हीन होवे ।
मूर्ख या विद्या में प्रवीण होवे ।।
सकल विश्व का है, वही एक स्वामी ।
सभी नामों में है वही नेक नामी ।।
वही एक ईश्वर है सब नारी नर का ।
इसी को पता सब के घरबार दर का ।।
दुःखों से होता न हरगिज दुखारी ।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी ।।

—३—

उसी ने यह संसार सारा बनाया ।
वेदों ने इसकी ही महिमा को गाया ।।
जिधर देखोगे तुम उठाकर नजर ।
कोई जर्रा हो या शमसो कमर ।।

इशारा उसी का यह करते सदा ।
बिना उसके सकता न कोई बना ॥
हर इक चीज में राज उसका छपा ।
जरा गौर से देख होता अयां ॥
उसी की है हर रंग में चमत्कारी ।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी ॥

—४—

भूला हुआ भटकता फिर रहा ।
कष्टों से रोता है आँसू बहा ॥
मुसीबत दिनोंदिन बढ़ी जा रही ।
करे कोई क्या जब हो उल्टी मति ।
बुरे कर्मों का जब कि मिलता है फल ।
समझ उलटी हो यह है नियम अटल ॥
उलटे को वह सीधा है मानता ।
सीधी को उलटा सदा जानता ॥
न दुःखों से करता कभी आहो जारी ।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी ॥

—५—

जो अपने ही हाथों से बरबाद है ।
उसे कौन कर सकता आबाद है ॥
अधूरे लिये उसने मार्ग बना ।
चला जल्दी जल्दी कदम को बढ़ा ॥
हुई दूर मंजिल गिरा हार कर ।
हिम्मत गई उसको लाचार कर ॥
सिर को पकड़ फिर वह रोने लगा ।
आँसू बहा मुख को धोने लगा ॥
बिगड़ी हुई बात बन जाती सारी ।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी ॥

—६—

कहा—ईश का होता अवतार है ।
अकल की कमी का यह इजहार है ॥
बनाता है जो सारे संसार को ।
कहो कैसे फिर उसका अवतार है ?
सकल विश्व में रम रहा सबका प्यारा ।
विचित्र है फिर भी रहे सबसे न्यारा ॥

जो अवतार का करता इकरार है।
सच्चाई से साफ उसका इन्कार है ॥
न आती कभी देश पर विपदा भारी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी ॥

—७—

कई किस्म की मूर्ति को है बनाया।
फिर मन्दिरों में जा उनको बिठाया ॥
लगे लोगों को उसकी महिमा सुनाने।
मुफ्त माल उड़ाने के सूखे बहाने ॥
फँसा फिर अविद्या के यह जाल में।
तड़पता है यह देखो बदहाल है ॥
नहीं भेद सच-झूठ में उसने जाना।
करी भूल उसने जो पूज्य उनको माना ॥
ऐसा कभी यह न बनता अनाड़ी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी ॥

—८—

खड़ा जल के आगे कोई हाथ जोड़।
सचाई से अपना लिया नाता तोड़ ॥
कोई वृक्ष के आगे कुछ कह रहा।
फिर बैठ कर देता सिर को झुका ॥
बे समझी के सब काम करने लगा।
दिन रात आपस में लड़ने लगा ॥
मुश्किल है अब इससे पीछा छुड़ाना।
है मुश्किल प्रभु का अभी हाथ आना ॥
न होती कभी दूर शान्ति भी प्यारी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी ॥

—९—

नहीं कौम सकती वह हरगिज सम्भल।
जिन के प्रभु होवें बड़ और पिप्पल ॥
न उस जाति में है सम्भलने की शक्ति।
करती फिरे जो है मुर्दों की भक्ति ॥
बुरी रस्मों ने होवे जिसको दबाया।
झगड़ों ने हो अपने बल को बढ़ाया ॥

बुरी रीति यह एक सब से बड़ी ।
मुसीबत की लाती है सिर पर कड़ी ॥
न बन्धन में फिर आता यह बारी बारी ।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी ॥

—१०—

वेदों में ईश्वर को ऐसा बताया ।
वह भरपूर सब जगत् में है समाया ॥
कहा सर्वदेशी को इक देश में ।
व्यापक को इन्सान के वेश में ॥
बना ऐसी बातें जगत् को हँसाया ।
इन्सां के दर्जे से खुद को गिराया ॥
अविद्या से हर दम यह डरने लगा ।
जो कुछ सूझा उसको वह करने लगा ॥
न फिर देश भारत की होती ख़्वारी ।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी ॥

—११—

जन्म जिसका होवे वह मर जाता है ।
न्याय यही सब को सिखलाता है ॥
अगर अकल है तब इसे मान लो ।
किए वेदों के इसमें प्रमाण लो ॥
वह है विश्वकर्मा अजन्मा सदा ।
पवित्र है निर्मल है वह सर्वदा ॥
वही सृष्टि सारी का आधार है ।
उसी की ही रचना यह संसार है ॥
बढ़ती न फिर देश में यह बेकारी ।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी ॥

—१२—

हिरण्यगर्भ उसको कहीं है बताया ।
उसी में यह ब्रह्माण्ड सारा समाया ॥
यही नियम न्याय है उसका अटल ।
करे जैसा कोई मिले वैसा फल ॥
निराधार वह, सब का आधार है ।
विचित्र, पवित्र, निराकार है ॥

वह माता पिता सबका भ्राता वही।
वही पूज्य है सबका त्राता वही ॥
अविद्या न आती फिर इसके अगाड़ी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी॥

—१३—

जो सच्चिदानन्द कहते हैं वेद ।
करो पूजा उसकी होवें दूर खेद ॥
अद्भुत विचित्र अनोखी है चीज।
वही समझें उसको जो हों बातमीज ॥
सूक्ष्म से सूक्ष्म महान् से महान् ।
पूर्ण है निर्दोषी उसका ज्ञान ॥
जब इसके लिये नहीं उसकी तलाश।
फिर इसके मिलने की हो कैसे आश ?
बिगड़ने की भारत न करता तैयारी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी ॥

—१४—

वही सबका आदि वही अन्त है।
समझे वही सच्चा जो सन्त है ॥
सीना से कीना को जो करदे दूर।
वही देखेगा दिल में अपने जरूर ॥
दुनिया की उल्फत में जो घिर रहा।
नहीं मिलता उसको यह सच है कहा ॥
वह नजदीक तू ढूँढता उसको दूर।
पड़ा अकल तेरी में यह फितूर ॥
पराधीनता से न होती लाचारी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी ॥

......१५...

वह है शुद्ध निर्मल है, वह सर्वदा।
पवित्र कहें वेद उसको सदा ॥
वह है रम रहा सब में भरपूर होकर।
वह नजदीक है देखे तू दूर होकर ॥
तू ढूँढे जिसे बैठा वह तेरे घर में।
है भूला भटकता है तू दरबदर में ॥

प्रभु संग प्रीति तू दिल से लगा ले।
तू घर बैठे ही उसको हृदय में पा ले॥
न फूलों की फिर सूखती यह क्यारी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी॥

—१६—

असल की भी होती है लेकिन नकल।
नकल जिसकी होवे नहीं वह असल॥
बहुत किसम की मूर्ति को बनाया।
फिर भी न भारत को सन्तोष आया॥
कबरों का भी बन गया यह पुजारी।
मिली मिट्टी में आबरू इसकी सारी॥
आ जावे जिसकी अकल में खलल।
नहीं रास्ती में फिर उसका दखल॥
नहीं बात यह इसने मन में विचारी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी॥

—१७—

जिसने है ईश्वर को मन से भुलाया।
दुःखों ने फिर उसको आकर सताया॥
प्रभु पूजा में जो हैं करते यत्न।
करे प्रेम वह सब से होकर मग्न॥
यह सन्देश देता है संसार सारा।
वही सबका मित्र, वही सबका प्यारा॥
इसे भूल कर किसने है सुख उठाया।
यह वेदों के उपदेश ने है बताया॥
मानो उसी को है कल्याणकारी।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी॥

—१८—

ऋषि मुनियों की बात को जान लो।
यह है सत्य मार्ग इसे मान लो॥
तेरे मन में उसका सदा है निवास।
फिरे ढूँढता जिसको वह तेरे पास॥
खबरदार हो इससे तू बेखबर।
इसी से भटकता फिरे दरबदर॥

वह हरदम तुम्हें कर रहा है इशारा ।
इधर आ क्यों फिरता है तू मारा मारा ॥
पूर्व पुरुषों की रीति है इसने बिसारी ।
ईश्वर का भारत जो होता पुजारी ॥

इस अद्‌भुत अपार संसार को देख कर परमात्मा की महान् महिमा का ज्ञान मन में स्वयं उत्पन्न होता है। वह इस सर्व संसार का आधार है। उसके ही प्रभाव से हर एक वस्तु में प्यार है और उसको भूल कर मनुष्य हर प्रकार से दुःखी होता है। जीवन के लिये सामग्री की जरूरत थी उसने अपनी कृपा से हर एक को उसका दान दिया और साथ ही यह भी बता दिया कि मुझ को भूलकर अपने जीवन को न बिताना। भक्ति वह शुभ कर्म है कि संसार का कोई भी काम इसकी बराबरी नहीं कर सकता। सांसारिक वस्तुओं के सेवन से जो फल प्राप्त होता है उसका सम्बन्ध संसार के साथ ही है। वह ज्यादा देर तक नहीं रहता, वह तो नाशवान् है, और जो परमात्मा की याद से फल निकलता है वह सदैव स्थिर है और उसके बराबर का कोई नहीं है, परन्तु मनुष्य उसको भूल जाता है। परमेश्वर की याद मनुष्य को प्रसन्न कर देती है और इसको शुभ कर्म करने के लिये आगे बढ़ाती और बुरे कर्म से पीछा छुड़ाती है। उपकार भुला देने वाले का संसार में नाम नहीं होता, वह इससे स्वयं सताया जाता है और अन्त में पश्चाताप करता है। परन्तु फिर भी कुछ बन नहीं पाता है। कोई मनुष्य किसी का उपकार करता है और कोई किसी के साथ सहानुभूति करता है, कोई किसी को जरूरत के समय आराम पहुँचाता है और कोई गिरते हुए को हाथ का सहारा देकर उठाता है। किसी ने किसी को धन से सहायता दी और किसी ने दूसरे को नेक राय दी। ऐसा देखने में आता है और संसार का कार्यक्रम इसी से अच्छा चलता है। कोई एक मनुष्य न सब से सहायता ले ही सकता है और न कोई सब को सहायता दे ही सकता है, यह बात कठिन है। और न सब मिल कर सब से सहायता ले सकते हैं और न दे ही सकते हैं। परस्पर सहायता से ही संसार चल रहा है।

परन्तु एक परमात्मा सबका अन्तरात्मा, प्राणी-मात्र का सहारा, सब में व्यापक और सब से न्यारा है। कोई भी चीज ऐसी नहीं है जो बिना इसकी सहायता के अपनी हस्ती (व्यक्तित्व) को स्थिर रख सके, फिर ऐसे दाता के दान को भूल जाना, ऐसे प्रभु को ध्यान में न लाना स्वयं ही अपने को प्रमाद में फँसाना है। यह बुद्धिमानों का काम नहीं, यह विद्वानों का सन्देश नहीं। यह काम तो सहज था पर गलती से अपने विचार को इधर से हटा लिया, जिससे शुभ काम में सुस्ती और बुरे काम में चुस्ती होना जरूरी था। समय हाथ से जाता रहा और इस प्रकार मित्रों को रुठाकर वैरियों को हँसाता रहा।

सत्य है, भूल से जो कार्य किया जाता है, उसका फल कब सामने आता है, यह मनुष्य नहीं जानता। यह भी सत्य है कि सांसारिक लोभ सब को इस संसाररूपी जाल में फँसाता है—अपनी चतुरता से सब को सत्य-पथ से हटा कर कुमार्ग पर ले जाता है। यह सांसारिक लोभ हर समय मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं। मनुष्य जानता हुआ भी इनके फेर में पड़ा रहता है। यह लोभ हर समय मनुष्य को धोखा देते हैं यह मनुष्य के लिये मित्र के भेष में शत्रु हैं। जब पहले-पहल मनुष्य इनके चक्कर में फँसता है तो आस्तिकता को छोड़कर नास्तिकता की ओर बढ़ता है, पाप-पुण्य में भेद नहीं कर सकता। तृष्णा देखने में अमृत, परन्तु असल में विष से भी बुरी है।

विद्वान् पुरुष सच बोलते हैं। उनको सत्य से प्रेम होता है। प्रभु को सत्य से प्रेम है इसलिये वे परमात्मा के समीप होते हैं। उनका कथन है कि जब साँसारिक लोभों की वासना जाती रहती है, तो मनुष्य के भीतर ज्ञान की वृद्धि हो जाती है। फिर उसको हर वस्तु अपने वास्तविक रूप में दृष्टिगोचर होती है, अन्तरात्मा की शुद्धता आत्मा को परमात्मा से जा मिलाती है। मनुष्य का वास्तविक रूप यही था। यहाँ पर ही मनुष्य का कार्य समाप्त हो जाता है। परन्तु इस कार्य के लिये जितना परिश्रम करना चाहिये, यह इसका इतना प्रेमी नहीं। जितनी चाह से इस ओर बढ़ना चाहिये। यह इसके लिए तैयार नहीं। इस समस्या को हल करने के लिये केवल आत्मा की शुद्धि चाहिये, इसके बिना हर परिश्रम निष्फल है। यह मूल्य की वस्तु नहीं, यह बाहरी योजना नहीं, यह तो मनुष्य के अन्तरात्मा की आवाज़ है, जो इसको फल दायक बना देती है। ईश्वर आस्तिकों के लिये न तो कहीं से आता और न नास्तिकों से परे हट कर कहीं जाता है। वह तो सर्वव्यापक है हर स्थान पर हर समय उपस्थित है। मनुष्य! तू उसको पाने के लिये कहाँ ढूँढ रहा है? वास्तव में वह तो तेरे भीतर ही है, परन्तु तू उससे असावधान है; वह तो तेरे घर में है परन्तु तू उसे ढूँढने के लिये बाहर घूम रहा है; वह तो हर समय चेतन है परन्तु तू उससे अचेत है; तू संसार में छुपा है परन्तु वह विद्या में प्रकट है। वह परमपिता परमात्मा हर समय एक रस में ही रहता है। परन्तु तू अपने झूठे विचारों के कारण उसको नहीं पा सकता।

यह सब भूमंडल उसी से उत्पन्न और उसी में समाप्त हो जाता है परन्तु वह इन दोनों अवस्थाओं से विरक्त है। वह एक है; क्योंकि दूसरा कोई उस जैसा नहीं है। वह दूर से दूर और समीप से समीप है। वह बड़े से बड़ा और छोटे से छोटा है। यही कारण है कि जो सूक्ष्म दृष्टि वाले हैं वे उसको देख सकते हैं परन्तु जो स्थूल दृष्टि वाले हैं इनसे वह दूर भागता है। जो इसका इच्छुक है, वह साहस वाला है, क्योंकि आलस परमात्मा को नापसन्द है। विद्या, सन्तोष और नम्रता साहस को बढ़ाते हैं। ईर्ष्या, द्वेष

आदि साहस को घटाते हैं। इसलिये मनुष्य को शुभकर्मों में मन लगाना और दुष्कर्मों से मन हटाना चाहिये। मनुष्य को ऐश्वर्य, धन, सुख, सम्पत्ति भोगते हुए परमात्मा को धन्यवाद देना चाहिये और दुःखित अवस्था में भी संतोष को कभी हाथ से नहीं छोड़ना चाहिये। इस प्रकार रहने से हृदय-दर्पण शुद्ध और मन साफ़ रहता है। अहंकारी और लोभी पुरुष यह सुनते ही डरता है। लोभ एक प्रकार का व्यसन है, जिससे भला-चंगा मनुष्य भी व्यसनी होकर उल्टे मार्ग पर चल पड़ता है। व्यसनी पुरुष की तृष्णा बहुत बढ़ जाती है। वह दूसरों को सुख में देखकर ईर्ष्या वश होकर घबराता है। जैसे भिखारी का पात्र कभी नहीं भरता, वैसे ही लोभी पुरुष को कभी संतोष नहीं होता। ऐसी अवस्था में परमात्मा का मिलाप कहाँ ? तृष्णा, लोभ एक प्रकार का फन्दा है, जिसमें एक बार फँस कर फिर उससे छुटकारा असम्भव है। संतोषी पुरुष को इसका ज्ञान है। प्रभु भक्तों के लिये वह हर स्थान पर है। वह एक देशी नहीं परन्तु हर देश व हर वस्तु में हर समय रम रहा है। परमात्मा सत्य है, वह प्रेम है, तुम भी इससे प्रेम करो। सँभलने का समय है, सँभलो और अपना उद्धार करो। वह एक रस रहने वाला है, कभी नहीं बदलता इधर-उधर जिधर चाहो ढूँढो, परन्तु जब तक अन्तरात्मा की शुद्धि नहीं होती तब तक उससे मिलाप नहीं हो सकता। जो जिज्ञासु उसको पवित्र तन तथा सच्चे मन से चाहता है, जिसका हृदय शुद्ध तथा मन अन्तरात्मा इन सांसारिक प्रलोभनों से दूर है जो मनुष्य उस के प्रेम में हर समय मग्न है—वह उस को अपने अन्तरात्मा के भीतर ही देख लेता है।

ऐसा शक्तिशाली व्यक्ति जो हर प्रकार से सम्पूर्ण है, जिस में कोई त्रुटि नहीं--- उस का पता सब से पहिले हमें वेदों ने दिया—वेदों ने हमें बताया कि यही इष्ट है, यही पूज्य है— इसी की ही उपासना करना हमारा अभिप्राय है, इसी को पाने का यत्न करो। वह एक है—वह सांसारिक तथा जाति आदि के बन्धनों से स्वतन्त्र है। ईश्वर की सामर्थ्य में यह बात मामूली है कि उसने सर्व संसार को रचा। परन्तु स्वयं रचना में न आना उस का एक सर्वश्रेष्ठ नियम है। सृष्टि उत्पत्ति के समय भले बुरे का ज्ञान कराना और बाद में कर्मानुसार जैसा किसी का कर्म है, न्याय पूर्वक दण्ड या फल देना उस का ही कर्त्तव्य है। वह अपने श्रेष्ठ गुणों के कारण सदा श्रेष्ठ है। परन्तु मनुष्य को भूल सताती है और पथभ्रष्ट कर देती है। परमेश्वर के असली स्वरूप को न जानने के कारण प्रकृति तथा जड़ पदार्थों की पूजा आरम्भ हुई—जो मनुष्य असली तत्त्व न जानते हुये गुणों को ही अपना उपास्य देव मानना आपना कर्तव्य समझते हैं, वे बार बार इसी संसार में चक्कर लगाते रहते हैं। सत्य है जो मनुष्य सत्य मार्ग को छोड़ कर कुमार्ग को अपनाता है, उस को कभी भी निर्दिष्ट पथ प्राप्त नहीं होता, जो मनुष्य सत्य और असत्य के भेद को जान कर सत्य को अपनाता है उस से

कभी दुष्कर्म नहीं होने पाता क्योंकि उस को ज्ञान है कि भला कार्य प्रकृति के नियम के अनुसार है और दुष्कर्म प्रकृति के नियम के विपरीत है, इस लिये ज्ञान प्रकाश मनुष्य को ऊपर उठाता और अज्ञान रूपी अन्धकार मनुष्य को नीचे गिराता है।

दृढ़ता, साहस तथा स्फूर्ति ज्ञान का परिणाम हैं, दुष्कर्म, कायरता और और आलस अज्ञान से उत्पन्न होते हैं, इसी कारण ज्ञान से प्रेम और अज्ञान से घृणा पैदा होती है।

भारतवर्ष वेदों का ज्ञान रखता हुआ भी इस सत्य मार्ग को ऐसा भूला कि अज्ञान में जो कुछ भी सूझा उसी को पूरा करना ही कर्तव्य समझ बैठा, इस से धीरे धीरे भेद बढ़ने लगा। किसी ने एक प्रकार की मूर्ति बनाई तो दूसरे ने उस को दूसरे ही ढङ्ग में बना लिया। इस अन्ध परम्परा ने बढ़कर देश को बहुत ही हानि पहुंचाई, देश को हर प्रकार के कष्टों से भर दिया। कोई शिवपूजन में कल्याण मानता है तो कोई विष्णु के दर्शन से मोक्ष मानता है, एक गणेश के आगे सीस झुकाता तो दूसरा देवी की चौखट पर मस्तक रगड़ता है, कोई हनुमान को अपना इष्ट मानता है तो दूसरा गङ्गा-स्नान में ही मुक्ति ढूंढता है। भारतवर्ष की इस वेढंगी चाल का कोई पता नहीं चलता, कुछ तो संतोष होता, यदि देश भर में एक प्रकार की मूर्ति का ही निर्माण होता, एक ही प्रकार से पूजन होता तो भी कुछ अंश तक एकता बनी रहती। आर्यसमाज तो मूर्ति-पूजन के विरुद्ध है। इस की दृष्टि में यह सब असत्य है, भारत के मनुष्यों ने करोड़ों रुपये के व्यय से मन्दिरों को बनाया, फिर आपस में द्वेष बढ़ने के अतिरिक्त हाथ कुछ न आया। यह सब को ज्ञात है कि इस समय देश की क्या अवस्था है, न धन है, न बल और न बुद्धि, अधिक कहने की अवश्यकता नहीं, दुर्बलता के कारण अब इस का सम्भलना कठिन है वह अपने यथार्थ स्थान पर कैसे आसकता है जब कि कुछ ही समय के पश्चात् कोई न कोई कोई सम्प्रदाय खड़ा हो जाता है और सहस्रों नर नारी बिना सोचे समझे उस के पीछे लग जाते हैं। ईश्वर प्राप्ति और इस संसार से छुटकारा पाना ही सब की इच्छा होती है। अज्ञानी होने के कारण न तो कोई पूंछता है और न इस पर विचार ही करता है कि यदि जिस पथ को उस ने अब अपनाया है सत्य है, तो वह पहिले गलत पथ का ही परित्याग कर दें परन्तु ऐसा नहीं होता, वह पहिले पथ का भी परित्याग नहीं करता और नवीन से भी चिमटा रहता है। इस जाति में यह एक अद्भुत बखेड़ा है, जिस का निर्णय होना कठिन है।

विचारने से पता चलता है कि जिस प्रकार घुड़-दौड़ में जब घोड़े को खाइयां अथवा टट्टी पार करनी होती हैं उस समय घोड़ा अपने पूर्ण बल और वेग को लगाता है, ठीक इसी प्रकार से चिरकाल सेआर्यजाति के साथ अज्ञान लगा हुआ

है। इस अज्ञान के हाथ अब समय आया है और यह समय को पा कर अपना सब बल इस जाति को नष्ट करने में लगा रहा है आप विचार करके देखें कि हिन्दू आर्य जाति के नामलेवा दिन प्रति-दिन कैसे दुर्बल होते जा रहे हैं ?

हे मित्र ! यदि इस अज्ञान से आप अपना छुटकारा चाहते हैं तो एक ईश्वर के पुजारी बनो, वह दु:खहर्ता और कष्ट मोचक है।

अपने भक्तों के कष्टों को शीघ्र दूर कर देता है, यदि भक्त वनावटी नहीं। यह वेदों का उपदेश बड़ा हितकारी है। अज्ञान का इस देश या हिन्दू जाति में बल कितना बढ़ा हुआ है, आप विचार दृष्टि से देखें।

(१) जो सब ब्रह्माण्ड का स्वामी और सब को अपने वश में रखता है, उसका नाम गणेश या गणपति है। यह तो ठीक है, परन्तु जब यह पूछा जाए कि मन्दिर में एक मूर्ति को दिखाकर यह कहना कि बस, यह मूर्ति ही अनन्त शक्ति है, इसी की पूजा करने से कल्याण होता है। यह एक ऐसी कल्पना है जिसे कोई भी बुद्धिमान पुरुष मानने से इन्कार करेगा।

(२) शिव या महादेव उसे कहते हैं जो कल्याण का स्वरूप हो और व्यापक हो, जिसका स्मरण मङ्गल-करण और अमङ्गल-हरण है। उस विषय में वेद शास्त्रों की तो यही सम्मति है। पर, आजकल लोग एक पाषाण-पिण्ड को मन्दिर में धरकर उसे ही महादेव कह कर पूजते हैं। देखिए, कैसा उल्टा ज्ञान है ?

(३) विष्णु सर्व व्यापक परमातमा का नाम है। वह सर्वजगत् का आधार, निराकार और निर्विकार है। उसका ध्यान करना मनुष्य के लिए कल्याणकारी है, यह सब बिल्कुल सत्य है। परन्तु, एक मन्दिर में सुन्दर चतुर्भुज मूर्ति को विष्णु बनाकर पूजना कैसी मूर्खता है ? इसी प्रकार और भी कई बातों में आजकल उल्टी गंगा बह रही है।

तीर्थ स्थानों की भी ऐसी ही अवस्था है। वहां अन्ध विश्वास ने राज्य जमाया हुआ है। लोग तो दूर २ से बड़ी श्रद्धा से सैंकड़ों कोस चलकर, धन खर्च कर तीर्थों पर पुण्य सिंचन करने जाते हैं, परन्तु उन्हें बुरी तरह निराशा होती है। पुराणों की मिथ्या बातें सुनने से वैदिक ज्ञान भी उनके हाथों से जाता रहता है। इसी का दुष्परिणाम आज हम देख रहे हैं। पहिले का समय आर्य जाति के लिये कितना सुखमय था, अब तो उसका ध्यान में आना ही दूर की बात है ! आर्यों की उन्नति के निम्नलिखित कारण थे :—

(१) सब संसार का रचयिता, सर्व प्रकाशक, सर्वान्तिर्यामी, सर्वज्ञ, सर्व-व्यापक परमेश्वर ही आर्यों का उपास्य-देव था। उनका यह अटल विश्वास था कि ईश्वर शरीर-रहित और अद्वितीय है। संसार की उत्पत्ति, स्थापना और नाश उसी के हाथ में हैं। न्याय-पूर्वक सब प्राणियों को कर्मानुसार फल

देना उसका स्वभाव है। इसी लिए उसकी आज्ञा का पालन करना मनुष्य मात्र के लिए कल्याणकारी है। इसी कारण उस प्रभु की प्राप्ति के लिए यत्न करना वे कर्त्तव्य मानते थे और उन पाप कर्मों से दूर ही रहते थे जो प्रभु-प्राप्ति के मार्ग में बाधक सिद्ध हों—

स एव एक वृदेक एव ।।अ० १३। ४। २२।।

यह मन्त्र भी उपरोक्त नाम का सूचक है।

(२) आर्य सत्यवादी और सत्यकारी थे। राग-द्वेष से भी झूठ बोलना इनका स्वभाव न था। इसी कारण प्रतिज्ञा-पालन करना उन्हें प्राणों से भी अधिक प्रिय था। निम्नलिखित मंत्र इसी बात का बोधक है—

इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ।।य० १।५।।

(३) कर्त्तव्य-पालन तो उनके लिए नित्य का स्वभाव हो गया था। संसार की कोई भी वस्तु उन्हें उनके उद्देश्य से नहीं हटा सकती थी। इस का कारण यह था कि वे कार्य करने से पहिले उसके परिणाम को अवश्य ध्यान में रख लेते थे और उस वचन को मुंह से निकालते ही न थे जिसे पूरा करने में वे समर्थ न हों। निम्न मन्त्र इसी बात का ज्ञापक है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि ।।य०—४०।२।।

(४) मनुष्य समाज में रह कर किसी को अन्याय से कष्ट न पहुंचे, सदा उन्हें इसी बात का विचार रहता था। उनके अन्तःकरण पवित्र थे, उनकी भावना उच्च थी। वे परोपकार को कर्त्तव्य और उपकार न करने को पाप समझते थे। कहा भी है—

आयुर्यज्ञेन कल्पन्ताम् ।।य० ९।।२१।।

(५) वे स्वयं न्याय का अनुसरण करते थे और अन्यों को कराते थे। उनका यह अटल विश्वास था कि जहां न्याय का प्रकाश है, वहीं प्रभु का निवास है। इसीलिए अन्यायमूलक पक्षपात से दूर रहना, मनुष्य जीवन का फल मानते थे।

अग्ने नय सुपथा ।।य०। ४०।७।।

दुराचार के दूर करने और सदाचार के वढ़ाने में आलस्य को त्याग कर यत्न करना उनका स्वभाव था। उनका यह विश्वास था कि दुराचार में पड़ कर मनुष्य समाज पराधीन हो जाता है और सदाचार से उत्थान की ओर निरन्तर वढ़कर स्वाधीन हो जाता है। अतः सदाचार से जिस प्रकार उन्हें प्यार था, उसी तरह दुराचार से वैर था—

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।भ० ३४।।१।।

(७) आर्यों ने निरन्तर वेदादि शास्त्रों के अभ्यास से स्वास्थ्य के सर्वोत्तम नियमों पर आचरण करना अपना धर्म मान रखा था। और इसी लिए वे

नीरोग, सुन्दर और सुडौल बने रहते थे और कभी बीमार हो जाने पर साधारण दवाई अथवा थोड़े परहेज़ से ही उन की तबीयत ठीक हो जाती थी। उनका यह पूर्ण विश्वास था कि दुर्बलता ही सब दुःखों और पापों का कारण है। इसी लिए स्वास्थ्य को बिगाड़ने वाली बातों का कभी साथ नहीं देते थे। इसका प्रमाण यह है—

बलमसि बलं मयि देहि ॥य० १९।९॥

(८) उदारता आर्यों के स्वभाव में उनके नियमों से प्रकट होती है। कोई भी पुरुष अपने पुरुषार्थ से जैसा गुण, कर्म, स्वभाव बना लेता था, समाज में उसे वैसा ही स्थान दिया जाता था। इस प्रकार हर एक को उन्नति करने का अधिकार था और वर्णव्यवस्था की मर्यादा का मार्ग बड़ा ही सरल था यदि भूल अथवा प्रमाद से उनमें कोई दोष आ भी जाता था तो वे बड़ी सावधानी से अपना पीछा छुड़ा लेते थे।

(९) आर्य पुरुष कभी भी प्रभु-उपासना में किसी सांसारिक वस्तु की याचना नहीं करते थे। उन्हें निश्चय था कि जो वस्तु अपने पुरुषार्थ से प्राप्त हो सकती है उसे परमेश्वर से मांगना भूल है। अतः प्रातः सायं वे ऐसे वचन मुख से निकालते थे कि हे प्रभु! आप का वियोग हमें बारम्बार संसार चक्र में फंसाता है और आप का संयोग मोक्ष में लेजाकर सदा हंसाता है। इसलिए हमें आपके दर्शनों की बड़ी अभिलाषा है।

यस्तन्नेद किमृचा करिष्यति ॥ ऋ० १। १६४। ३९ ॥

(१०) आर्यों ने वैदिक ज्ञान से आश्रमों के नियमों को इतना सरल बना दिया था कि जिन के पालन करने से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति में सब को प्रेम था इसीलिए संसार सुख और शान्ति प्रिय भी था। मृत्यु से पूर्व ही साँसारिक बन्धनों से मुक्त हो शरीर त्यागना अपना सौभाग्य समझते थे और वे सांसारिक मोह में पड़ कर रोते हुए शरीर त्यागना बन्धन का कारण जानते थे। संन्यास आश्रम इस नियम का प्रकाशक है...

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति ॥ अ० १९। ४३। ८ ॥

मुक्ति-मुक्ति मांगू नहीं भक्ति दान दे मोही।
और कोई याचूं नहीं निश दिन याचूं तोही ॥

आ गया तेरी शरण जब, तो मुझे अब भय कहां।
मैं तेरा, किश्ती तेरी, साहल तेरा, दरया तेरा ॥

तेरे दर को छोड़कर जायें कहाँ हम बेनिवा।
या बता दे अपने जैसा और कोई घर हमें ॥

ईश्वर के साक्षात्कार के साधन

निर्लोभता

वेदों में मनुष्य-जीवन के सुधार के लिये अनेकों प्रकार के आदेश किये हुए हैं। कारण यह है कि यदि मनुष्य-जीवन सुधर जाय तो संसार के समस्त प्राणियों को आराम पहुंचता है। यदि मनुष्य का जीवन विकृत हो जाय तो उसके जीवन का प्रभाव प्राणिमात्र पर बुरा पड़ता है। अक्लमन्द मनुष्यों ने एक साथ मिलकर, साथ में बैठकर हानि और लाभ का विचार कर रक्खा है। जैसे देखो—

एक मनुष्य ने अच्छा मकान बनवाया। उसके दिल में खयाल आया कि इसके कमरों में हरिण के सींगों की खूंटियें लगवाए। इस तरह का मूजी खयाल उसके दिल में आ गया। अब यदि वह शिकारी है और उसके पास बन्दूक है तो जंगल में जाकर हरिणों को मारना शुरू कर देगा। यदि खुद शिकार नहीं कर सकता है तो दूसरे शिकारी लोगों से कहेगा कि तुम मुझे यदि हरिण के सींग लाकर दोगे तो मैं तुमको एक-एक सींग का एक-एक रुपया दूंगा। अब आप ही विचार कीजिये, सींगों के लिये बेचारे निरपराधी हरिण यों ही मारे जावेंगे। कमरे में खूंटियें तो चन्दन की भी लगाई जा सकती थीं, जिनके अन्दर से खुशबू आती है अथवा किसी दूसरी लकड़ी वा किसी धातु विशेष की खूंटियों से भी उसके कमरे की शान बढ़ सकती थी, क्योंकि उसको खूंटियों पर कपड़े ही तो टाँगने थे, लेकिन उसके दिल में यह खयाल पैदा हो गया कि नहीं कमरे की सजावट तो हरिण के सींगों से ही हो सकती है। उसके दिल में तो ऐसी भावना पैदा हुई, पर बेचारे जानवरों के ऊपर मुसीबत आ गई। मनुष्य की भावना का कैसा बुरा प्रभाव पड़ा ? आजकल तो मनुष्य का जीवन बहुत ही कटु हो रहा है, उसकी कटुता का बुरा प्रभाव मनुष्य पर भी है और बेचारे दूसरे पशुओं पर भी। अगर उसको सींगों की जरूरत होती है तो वह सींग उखाड़ लेता है। अगर उसको चमड़े की जरूरत है तो वह फौरन चमड़ा खिंचवा लेता है और अगर उसको मांस खाने की आदत है तो वह बेचारे निरपराध हजारों पशुओं को मार डालता है। अब आप देख लीजिये कि यह सृष्टि परमेश्वर की है। उसने मनुष्य और पशुओं को बनाया

है। पशुओं पर मनुष्य कितने अत्याचार कर रहे हैं। पशुओं ने कोई जमीन भी नहीं बांटनी। उनको और किसी बात की जरूरत नहीं। उनके लिये तो जंगल के अन्दर ही खाना मौजूद है, परन्तु बांटना है तो मनुष्यों को, धन की इच्छा है तो मनुष्य को। यदि कभी लड़ाई होती है तो मनुष्यों-मनुष्यों में आपस में होती है, परन्तु उनकी लड़ाई में बेचारे निरपराध पशु ही मारे जाते हैं। मनुष्यों ने ही दूसरों के धन के हरण करने की इच्छा से गैस, तोपें, बन्दूकें बम आदि बनाये हैं। इनकी आपस की लड़ाई से हजारों निरपराध पशु मारे जाते हैं। इसीलिये वेदों में उपदेश दिया गया है और आज भी उपदेश का सिलसिला जारी है, तो इस उपदेश का मतलब यही है कि किसी भी तरह से मनुष्यों की भावनाओं में सुधार हो। मनुष्यों की भावनाओं के सुधार में समस्त विश्व के प्राणियों का कल्याण है और उसके बिगाड़ में प्राणिमात्र को कष्ट ही कष्ट है। ये दुःख इतने क्यों होते हैं? आज दुनिया में स्वार्थ का बाजार बहुत गर्म है। स्वार्थ दुनिया में बहुत ही बढ़ा हुआ है। स्वार्थ ने बढ़ करके इन्सान की विचार-शक्ति को मलिन और विकृत कर दिया है। हरएक इन्सान को लोभ और लालच ने इतना नीचा गिरा दिया है कि कहने की कोई बात ही नहीं। यह कम्बख्त लोभ की भावना कब तक बढ़ती जायगी? आज हरएक मनुष्य में वैश्यवृत्ति काम करने लग गई है। लोग कहते हैं कि यह ब्राह्मण है पर वह ब्राह्मण कहाँ! वह कभी ब्राह्मण नहीं हो सकता जिसके अन्दर वैश्यवृत्ति हो, जो धन के लालच में पड़ा हुआ है। लोग कहते हैं कि यह राजपूत है, परन्तु वह राजपूत है कहां! वह कभी राजपूत नहीं हो सकता जिसके अन्दर वैश्यवृत्ति काम कर रही है। ब्राह्मण में वैश्यवृत्ति, क्षत्रिय में भी वैश्यवृत्ति हो गई है। वैश्य में तो वैश्यवृत्ति चाहिये ही थी। धन में लोभ होना ही वैश्यवृत्ति है वैश्य का तो काम ही धन कमाना है, परन्तु आजकल तो शूद्रों में भी वैश्यवृत्ति हो गई। अब अगर खयाल करके देखो तो धन कोई बुरी चीज नहीं है, लेकिन अच्छी चीज होने पर भी यह तीसरे दर्जे की चीज है। यह तीसरे दर्जे पर ही अच्छी लगती है, पहले दूसरे या चौथे दर्जे पर नहीं। जैसे—

एक बालक है, उसका काम है विद्या पढ़ना और शारीरिक शक्ति बढ़ाना। जब शारीरिक शक्ति खूब बढ़ जावे और बालक जवान हो जाय तब उसकी शादी की जाती है। शादी कुछ बुरी चीज़ नहीं है, परन्तु वह जवानी में अच्छी रहती है। अगर जवानी आने के पहले बालकपन में ही शादी करदी जावे तो वह बहुत ही नुकसान देने वाली है। पीछे की चीज़ को पहले और पहले की चीज़ को पीछे करने से ही बुराइयां और तकलीफें होती हैं।

एक लड़का है, उसको पाठशाला में चार चीजें पढ़ाई जाती हैं। पहले जमा और फिर तकसीम। लड़के को पहले जमा सिखाने के बाद में ही

तकसीम सिखलाई जा सकती है। अगर जमा के पहले ही बालक को तकसीम सिखायेंगे तो वह संकट में पड़ जायगा। कायदे के मुताबिक पहले लड़के को जमा का क़ायदा ही सिखाते हैं अर्थात् पहले उसको गिनती सिखाते हैं १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, तक। संख्या तो एक ही है उसी से ९ तक बनी है। परमात्मा भी एक है। वेद-मन्त्रों में भी यही बताया है।

न द्वितीयो न तृतीयो न चतुर्थो न पंचम, इत्यादि

जमा सिखाने में पहले एक से सिखाना पड़ता है। सौ के आदि में भी एक है, मध्य में भी एक है और अन्त में भी एक है। परमात्मा भी एक है। असल संख्या तो एक ही है। एक सब में मौजूद है, तीन में दो मौजूद है लेकिन २ में ३ मौजूद नहीं है। ऐसी कोई भी संख्या नहीं है, जिसके अन्दर एक न हो। तीन, चार और नौ इन सब में एक-एक मौजूद है। यह समझ लीजिए कि एक और एक दो होंगे। वास्तव में तो एक ही एक है, अब देखें कि आगे चलकर संख्या ९ तक ही है। आप पूछेंगे क्यों ? तो इसका उत्तर है नौ जो संख्या है यह पूर्ण संख्या है। एक जो संख्या है यह सर्वतन्त्र स्वतन्त्र संख्या है, क्योंकि यह ८ में, ९ में, ६ में, ७ में सब में ही पाई जाती है, क्योंकि ८-९ वगैरह संख्याओं की व्यवहारिक सत्ता है, परमार्थ में तो एक ही एक नज़र आता है। एक बात तो यह हुई, अब दूसरी बात यह है कि यह सर्वतन्त्र और स्वतन्त्र क्यों है ? जो संख्या आदि, अन्त और मध्य में तथा सब जगह रहेगी वह सर्वतन्त्र और स्वतन्त्र संख्या कही जायगी। ९ को पूर्ण संख्या क्यों कहते हैं ? पूर्ण संख्या वही है जो अपने में न्यूनता न आने देवे। अफ्रीदी लोग; जो सीमा पर रहते हैं उनके एक बच्चे से किसी ने पूछा कि—

तुम यह बताओ कि तुम अपनी कौम की कभी अपने स्वार्थ के लिए हानि करते हो या नहीं ? तो उस बच्चे ने जवाब दिया कि हमारी कौम अगर सौ वर्ष तक किसी की गुलामी में रह जायगी तभी हम में ये ख़याल पैदा होंगे। जो स्वतन्त्र आदमी है वह कभी परतन्त्र हो सकता है ? वह हर तरह से अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करेगा।

हम लोग वेद को मानने वाले हैं। हम अपने को ऋषि-मुनियों की सन्तान कहते हैं, ओम् का जप करते हैं, परन्तु जब तक हमारा व्यवहार न सुधरेगा, ओम् हमको ऊँचा नहीं उठा सकता। अगर हमारा व्यवहार ऊँचा उठ जायगा तो हम भी ऊँचे उठ जायेंगे। अगर हमारा व्यवहार नीचे गिर जायगा तो हम भी नीचे गिर जायेंगे। आप कहेंगे कि व्यवहार तो सैकड़ों प्रकार के हैं। हम किन-किन को शुद्ध करें ? तो मैं आप लोगों से कहता हूँ कि आप तीन बातों को शुद्ध करलें तो आपके सब व्यवहार सही हो जायेंगे। जो छोटे अर्थात् बच्चे हैं उन पर आप दया रक्खें और जो जवान आदमी अर्थात् बराबर

वाले हैं उनसे प्रेम रक्खें और जो बुड्ढे लोग हैं उनकी इज्जत करें। इन तीनों बातों पर जब आप अच्छी तरह अमल करेंगे तब फिर आप देखिये कि कौनसा बुराकाम कर सकते हैं ? अब जो आपसे बड़े होंगे उनकी तो आप इज्जत करेंगे इसलिये उनके साथ कोई भी बुराई नहीं कर सकते। और जो आपकी बराबरी के हैं उनके साथ आप प्रेम करते हैं इसलिये उनके साथ भी आप छल-कपट नहीं कर सकते, क्योंकि मोहब्बत के साथ कपट कैसा, और आप से जो छोटे हैं उन पर आप दया रक्खेंगे। कोई भी चीज आपके पास आई तो आप उसे पहले बच्चे को दिये बिना नहीं खा सकते। इन तीन नियमों पर चलें। तो संसार बच सकता है और काम, क्रोध और लोभ इन तीनों को त्याग देवें तो संसार बन सकता है।

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेत्तयं त्यजेत्

श्रीकृष्ण जी ने गीता में कह दिया है कि काम, क्रोध और लोभ इन तीनों को त्याग देने से मनुष्य सुखी हो सकता है, परन्तु आज हर एक इंसान में लोभ बढ़ गया है पैसा होगा तो मोटर ले लूँगा, सिनेमा देख आऊँगा, आनन्द से रहूँगा, मौज करूँगा आदि २। आज पैसे की इतनी कदर बढ़ गई है। इसीसे इतने दुःख बढ़े हुए हैं, और परमेश्वर को संसार पीछे डाल रहा है, इसलिये ज्ञान ही का सब से पहला दर्जा है। पैसा दुनिया के लिये अच्छी चीज़ है। पैसा लेन-देन के व्यवहार के लिये बना है। आप मेरे पास से लेलें, मैं आपके पास से लेलूँ मगर पैसा है—वह ज्ञान के साथ आता है। मनुष्य को अगर ज्ञान पैदा होगा तो पैसा अपने आप आ जायगा, फिर वह किसी के रोकने से नहीं रुक सकता।

अगर ज्ञान नहीं, तब वह ईश्वर को नहीं देख सकता। देखो ! एक सेठ है उसके दो मुनीम हैं। एक की आयु क़रीब २४-२५ वर्ष की है और दूसरे की करीब २०-२१ वर्ष की। दोनों ही होशियार हैं, लेकिन सेठ एक को ४५) रु० और दूसरे को २५) रु० मासिक देता है। एक दिन २५) रु० पाने वाले मुनीम ने कहा—सेठ साहब ! मुझे २५) रु० देते हैं और उसको ४५) रु० इसका क्या मतलब ! देखो ? हम दोनों बराबर हैं। दस्तख़त देख लीजिये दोनों के बराबर हैं। जितनी देर यह काम करता है उतनी देर मैं भी काम करता हूँ। हम दोनों ही आपके नौकर हैं। जैसा यह शरीर से पुष्ट है वैसा ही मैं भी हूँ, तब यह भेद क्यों ? सेठ ने कहा—इसके पास जो चीज़ है वह तेरे पास नहीं है। उसने कहा—क्या ? सेठ ने उत्तर दिया—यह तेरे से बुद्धिमान् ज्यादा है। मुनीम ने कहा—आप इस बात का इम्तिहान कर लीजिये। सेठ ने कहा—अच्छा, फिर नाराज़ तो नहीं होंगे ? नहीं, तो ठीक है, मौका आने पर कर लेंगे। थोड़े दिन के बाद जायफल लदे ऊँट आये। सेठ ने उस को कहा कि जाकर पूछो कि ऊँट पर क्या चीज़ आई है और बेचना है या नहीं ? मुनीम उसके पास गया और बोला—तुम्हारे पास क्या चीज़ है ? उसने

कहा—जायफल है। बेचेगा ? हां, बेच लेंगे, बस इतना पूछ कर वह चला आया और सेठ से बोला—जायफल है और वह बेचने को कहता है। दूसरे को कहा—अब तुम जाकर पूछो। दूसरा उठा और भाव बाज़ार में पूछता गया कि जायफल क्या भाव है ? एक ने कहा—१।।) सेर, क्या तुम जायफल डेढ़ सेर के भाव से मोल ले लोगे ? उन्होंने कहा—नहीं। आखिर छटांक ऊपर १।।) सेर पर तय हुआ। पचास रु० का जायफल उस व्यापारी का नोट किया। फिर दूसरे को पूछा, तीसरे को पूछा, इस प्रकार सब का भाव लिख लिया। तब मुनीम ने उसको जाकर पूछा—क्या जायफल है ? उसने कहा—है। बेचेगा ? हां। किस भाव बेचेगा ? जैसा भाव बन जायेगा, बेच देंगे। अच्छा दो सेर दोगे ? नहीं, इतना नहीं देंगे। अन्त में एक छटांक कम २ सेर तय हुआ। अब वह उन सब दूकानदारों को बुला लाया और सबों को जितना-जितना कहा था, तोल दिया और उनके पास से रुपये लेकर और उस ऊँट वाले को दे दिये। छः छः छटांक का उसे नफा रहा और उसको लेकर उसने बेच दिया। तो इस तरह दो सौ रुपये का नफा उसे हुआ। वह दो सौ रुपये दूकान पर लाकर रख दिये। अब सेठ ने पूछा—यह कैसे रुपये ? उसने कहा कि मैं जब गया तो सब दूकानदारों से भाव पूछ लिया और पूछ करके इसका व्यापार किया जिसमें छः छः छटांक का नफा रहा, उसको बेच कर यह रुपया लाया हूँ। तब उसने दूसरे मुनीम से कहा कि सुनो, तुम भी गये थे और यह भी गया परन्तु इसने भाव भी पूछ लिया, बेच भी दिया और बाहर ही रुपया भी चुका दिया और उल्टा दो सौ रुपया नफा का ज्यादा लेकर आया। यही कारण है, जिससे इसको ४५) रु० मिलते हैं। वह शरमिन्दा हो गया। यह तो एक मामूली बात मैंने आपको बताई। ज्ञान जिस वक्त विमल हो जायेगा आपको हर एक चीज़ असलियत में नज़र आवेगी। व्यवहार में आपका ज्ञान अन्धा है। वह ज्ञान अन्धा है। वह ज्ञान जिस दृष्टि से निकलता है परमात्मा को नहीं देख सकता। जब हम रोज पढ़ते हैं कि भाई-भाई को प्रेम के साथ रहना चाहिये पर दिन भर प्रेम करें और शाम को रोज हमेशा लड़ लेवें इसका तो कोई ठिकाना नहीं। उपदेश लभकारी तो सिद्ध है मगर उसके ऊपर अमल किया जावे तो तुम्हारा जीवन परमेश्वरमय बन जावे। क्या लड़ना अच्छा है ? ज्ञान से सोचो आर्य समाज आज काम कर रहा है उस का काम कुछ बढ़ा, वह मुश्किल में पड़ा और उसका सामना भी किया। परन्तु यह तो इतना ही है। जैसे-एक आदमी को सचेत कर के कह दिया, यह मंजिल नहीं है इस मंजिल से जाओ। अब तुम ठीक मंजिल के सामने खड़े हो, पर मंजिल तय करना तो बाकी है। अगर आप भी यह समझलो कि यह उपदेश हमारे हित के लिये कर रहे हैं। उस पर चलने लग जाओ तो कितना लाभ हो जावे, लेकिन जो बोले सो कुण्डा खोले, जो कहे सो करे, हम से तो नहीं होता। भाई ! यह बात नहीं बनती। सुनो, ज्ञान का तकाज़ा है जिस दिन तुम ज्ञानमय उपदेश पर चलने में कामयाब हो जावोगे तो तुम्हारी ताकत नहीं रुक सकती।

पवित्रता

दो चीजों के साथ में दो चीजें बंधी हुई हैं, जब तुम उन दो चीजों को हाथ में लोगे तो स्वयमेव ही असली दो चीजें प्राप्त हो जायेंगी सफाई और सादगी। जिस समय यह दोनों तुम्हारे कब्जे में हुयी, उस समय इसका पारितोषिक क्या मिलेगा ? तन्दुरुस्ती और सादगी, तो इनके साथ अपने आप आजावेगी। सफाई क्या है ? एक तो सफाई है कपड़े की, चाहे कपड़ा कीमती न भी हो पर साफ होना चाहिये, चाहे वह दो आना गज़ का ही क्यों न हो। यहां तो सफाई चाहिये। खाने में तुमको दाल-रोटी चाहिए। पर दाल अच्छी और रोटी अच्छी हो सिकी हुई हो। प्राचीन समझदार माताएं इस क़ायदे से भोजन बनाना जानती थीं वे आदमी को स्वस्थ रखने में रुपये में दस आने कारण होती थीं। उनको पता था कि फाल्गुन और चैत्र में किस चीज़ का उपयोग करना चाहिये। ज्येष्ठ-आषाढ़ में किस चीज़ का और श्रावण में किस चीज' का, यह भी वह जानती थीं। वह आजकल की तरह आदमियों से यह कभी नहीं पूछती थीं कि आज क्या बनाऊं ? यह वह स्वयमेव ही जानतीं थीं। प्रकृति ने दुनिया की रचना इतनी अच्छी की है कि मनुष्य बीमार नहीं हो सकता। जिस मौसम में आम होता है, ज्यादा खा जाने से अजीर्ण हो जाता है। आम के साथ यदि दस पांच जामुन खा लें तो आम का दोष दूर हो जायेगा। फाल्गुन में फोड़े-फुन्सी हो जाते हैं बस उसी के साथ बेर होते हैं, जो फोड़े-फुन्सी को दूर करते हैं। माताओं को इन बातों को जानना चाहिये। इस प्रकार यदि यह बातें व्यवहार में लाई जायें तो रोज़ इस प्रकार रुपये में १० आने काम हो जायें - सफाई क्या है ? साफ रहने को सफाई कहते हैं।

मैं एक बार पंजाब में भावुद्दीन मण्डी गया। उस जगह सफाई नहीं थी। वहां सब होटलों में रोटी खाते हैं, साथ में मांस भी होता है। वहाँ कोई ऐसा बावरचीखाना नहीं, जहां मांस न हो, समाज के पास एक दुकान थी, वहां एक नौजवान लड़का बैठा हुआ माँस खा रहा था, उसके नज़दीक ही एक आदमी जूती पहने बरतन मांज रहा था और जूते मंजे हुए पात्रों से लग रहे थे। उस नौजवान ने कहा—अरे भाई ! तू करता क्या है ? कटोरे और गिलासों से तेरे जूते लग रहे हैं इतने में एक दूसरा आदमी उस नौजवान से बोला—तू क्या खा रहा है ? यह तो बाहर का चमड़ा है, इसको सिर्फ लगता है, पर जो तू खा रहा है वह तो भीतर का है इसमें उनमें कहा—सुनी हो गई, फिर तो

लट्ठ चल गये, सो बात क्या है ? दुनिया का नियम है कि खाने में सफाई होवे घर में सफाई होनी चाहिए। यह तो हुई सफाई बाहिर की। अब मन की भी सफाई होनी चाहिये। दिलके दोषोंको साफ करो। फिर परमात्मा का साक्षात्कार हो जावेगा। दिल जिसका मलीन है, उसका क्या ठिकाना। दिल की सफाई होनी चाहिये। लेनदेन में सफाई होनी चाहिये। पहिली में सफाई और दूसरी सादगी से क्या मतलब ? जो इन्सान तबियत का सादा होता है वह गुणग्राही होता है यह नियम है। दिल भी सादा होना चाहिए, कपड़ा भी सादा होना चाहिये, जैसे सादे काग़ज़ पर जो लिखते हैं वह पढ़ लिया जाता है। पर यदि लिखे काग़ज़ पर फिर लिख दिया जावे तो पहिले का लिखा हुआ भी गया और दूसरा भी गया। तो जिस की तबियत में सादगी होती है वह गुणग्राही होता है। हम गुणग्राही हैं ? नहीं। यूरोप देश में जिस तरह के कपड़े बनते हैं वैसे हम भी बनाने लगे। वे हैट लगाते थे, हमने भी हैट लगा लिया। वे टाई लगाते थे, हमने भी लगाली। सब कुछ किया, पर क्या उनके गुण भी हमारे में आये ? जैसे वे टाइम के पाबन्द हैं वैसे हम नहीं हैं। जैसे उनको देश का प्रेम है वैसा हम में नहीं। जिस प्रकार वे कपड़े आदि से साफ रहते हैं क्या हम वैसे हैं ? नहीं। क्यों नहीं हम गुणों को ग्रहण करते। हमारे में सादगी नहीं, अगर सादगी होती तो वे गुण आ जाते। गुण-ग्रहण करना तो बहुत अच्छी बात है। भाई! कोई परमेश्वर ने उनमें गुण नहीं डाल दिये हैं। उसने सिर्फ जैसे हम हैं वैसे ही उन को बनाया है। परन्तु देखो आज हम कैसे हैं—

जो यूरुप करेगा वही हम करेंगे
जिधर वह चलेगा उधर हम चलेंगे ॥

वह पड़ेगा हम भी पड़ेंगे ॥।
वह लड़ायेगा, हम लड़ेंगे ॥

यह बात है। गुरु गोविन्दसिंह जी ने सिक्खों को कच्छ (जांघिया), कड़ा, केश और कृपाण ये पांच चीजें दी थीं, पर किसी ने नहीं अपनाया। लेकन जब यही निक्कर यूरुप वाले पहनने लगे तो हम भी पहनने लग गये, यह बात है। अमेरिका में लड़ाई हुई, वहां पतलून पहनते थे। इससे उठने में बड़ी मुश्किल होती थी। जब सिपाही लड़ाई में गिर जाते तो पतलून के कारण उनसे जल्दी नहीं उठा जाता था। एक बार कप्तान ने एक सिपाही के गिर जाने पर उसके पतलून को घुटने के नीचे-नीचे से काट डाला। तब वह उठा। सब से नीचे तक का तो हो गया मौजा और ऊपर का हो गया नेकर। अब इसको सब पहिनने लग पड़े। हम सादी तबियत के नहीं हैं। आन्तरिक गुण जो हमारे हैं, वे कुछ मैले हैं। इनको साफ करने वाली सादगी है इसलिये यह गुण है।

'साफ कर दिल को तू अपने , सिकन्दर हो ज़माने का'

अक्लमन्द आदमी बच्चे के भी सच्चे उपदेश को ग्रहण कर लेता है। हमें गुणग्राही होना चाहिये जिस समय सफाई और सादगी हमारे पास होगी, उस समय हम में तन्दुरुस्ती और सादगी अपने आप आ जावेगी। यही ज्ञान का तकाज़ा है। तुम सादे मत रहो, सफाई से मत रहो तो तुम्हारी तन्दुरुस्ती अवश्य बिगड़ जावेगी। सादगी नहीं आती है। इस वास्ते मेरे भाई ! ज्ञान का तकाज़ा है कि जिसकें पास सादगी है उसको आजामगी लेने में वड़ा ज़ोर नहीं लगाना पड़ेगा। थोड़ी ही हिम्मत से आ जावेगा।

ज्ञान के पीछे ताक़त, बल है। बल कई किस्म का है। एक है जिस्मानी ताक़त। जिस इन्सान की जिस्मानी ताक़त ठीक है, वह इन्सान बीमारियों से बचता है। जिसकी जिस्मानी ताक़त ठीक नहीं है वह बार-बार बीमार होगा।

दूसरी है आत्मिक शक्ति और तीसरी है सामाजिक ताक़त। ऋषि दयानन्दजी ने कहा था कि आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य संसार के प्राणिमात्र का उपकार करना है। ऐ आर्यो ! इस बात को जान लो कि संसार का उपकार करना तुम्हारा उद्देश्य है। कितना बोझा आर्यों के कन्धों पर रख दिया है। इससे ऊंचा कोई उद्देश्य, इन्सान नहीं बना सकता। कोई अपने मुल्क की भलाई करेगा, कोई मनुष्य जाति की। पर संसार का उपकार करना आर्यों का मुख्य उद्देश्य बताया। इस उद्देश्य में हम कामयाब तब होंगे जब पहिले हम अपनी शारीरिक उन्नति करलें। फिर आत्मिक उन्नति करो। पीछे से सामाजिक उन्नति करना। कौन पुरुष व समाज संसार का उपकार करने में समर्थ होगा। वही पुरुष और समाज, जो अपनी जिस्मानी ताक़त को पैदा करेगा। जिसकी जिस्मानी ताक़त ठीक होगी। उसकी आत्मिक अवस्था ठीक होगी। तीसरे आत्मिक बल और जिस्मानी ताक़त मिलकर उससे जो समाज बनेगा, वही संसार का काम करेगा। जो आपस में ही लड़ते हैं, वे क्या संसार का उपकार करेंगे, इसलिये इन ताक़तों को हमें संगठित करना चाहिये।

हर रात के पिछले पहरे में इक दौलत लुटती रहती है।
जो सोते हैं सो खोते हैं जो जगते हैं सो पाते हैं॥
श्रम ही से सब मिलत हैं, बिन श्रम मिले न काहि॥
सीधी अँगुरी घी जम्यो, क्यों हूं निकरै नाहिं॥

करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, सिल पर होत निशान॥
विद्या धन उद्यम बिना, कहौ जु पावे कौन।
बिना डुलाये ना मिले, ज्यों पंखा की पौन॥

सेवाभाव

पहिले ज्ञान फिर बल और फिर धन आया।

धन से मतलब, पैसे रुपये और चांदी से नहीं है किन्तु वास्तव में गेहूँ का नाम धन है, चावलों का नाम धन है, अन्न वस्त्रादि सारी चीजों का नाम धन है। इसलिए मेरे भाई! अब बताओ कि आपके यहां पर कोई चीज अच्छी भी मिलती है "आयुर्वेद घृत" जो घृत है वही जीवन है। पर क्या वह आज भी अच्छा मिलता है? नहीं जिस दुकान से लोगे, वेजिटेबल ही मिलेगा, अच्छा घी मिलता ही नहीं। लोग कहते हैं कि गांवों से अच्छा घी आता है पर गांव वाले लोग क्या करते हैं। यहां से वेजिटेबल घी ले जाते हैं और सेर दूध पीछे पाव भर वेजिटेबल घी डाल कर जमा देते हैं और उसको बिलो कर यहां ले आते हैं, जिस से उन को तीन चार आने का फायदा पड़ जाता है। खाद्य पदार्थ जिस से दिमाग तेज होता है और शरीर में फुर्तीलापन आता है, वह शुद्ध मिलता नहीं। लेकिन दूसरे मुल्क वालों ने मक्खन आधी छटांक और दूध डेढ़ पाव की औसत प्रत्येक आदमी के लिए रख छोड़ी है। पर इस मुल्क में वनस्पति से घी बनता है अब तो शायद आटा दाल चावल आदि भी बनावटी बनने लगेगा इसके लिए किसको दोष दें, कहा है—

भाग्यहीन न जानन्ति रत्न गर्भा वसुन्धरा

जिस इन्सान के कर्म में फर्क आ जाता है वह नहीं जान सकता कि यह भूमि रत्नगर्भा है, सब कुछ देने वाली है, इस में अनन्त रत्न भरे पड़े हैं। यह बातें वह नहीं जान सकता जिसमें कर्म करने की अक्ल नहीं है, और भी एक बात सुनिये—अंगूर की फसल में अंगूर हैं। मगर कौवा इनको नहीं खाता तो लोगों ने कहा कि भाई ऐसी चीज जिसमें बीज नहीं है तू क्यों नहीं खाता। कहा है—

जब द्राक्षा पाकन लगे काग कंठ हो रोग,
भाग्यहीन को ना मिले भली वस्तु का भोग।

जिस समय अंगूर पकने लगते हैं तो उस समय कौवे के गले में गांठ हो

जाती है। इस प्रकार जो भाग्यहीन होता है उसको अच्छी वस्तु नहीं मिल सकती।

अब आगे आप को धन पैदा कर लेना चाहिये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मेहनत करने पर ही धन मिलेगा।

तुम्हारे पास धन आवेगा। पहले तुम अपना बल बढ़ाओ। अगर आर्य समाज दूसरों के पास मांगने जाता है तो ठीक नहीं। कायदा तो यह कि "हाथ मत पसार" यह एक भारी ऐब है। अब तुम को ऐसी बात नहीं करनी चाहिए। अगर आर्यसमाजी व्यापारी, हाथरस के, जयपुर के, कोई जालंधर और कोई अमृतसर, बनारस के व्यापार को अपने हाथ में लेते और इधर उधर को भेजते तो आज सैकड़ों आर्य लखपती होते। किसी की मदद की जरूरत नहीं होती, मगर व्यापार चले तब न! पर अगर अक्लमन्द आकर के काम करेंगे तो काम चलेगा। इस तरह मांगते हुए कहां तक काम करेंगे? इस तरह मांग कर, चन्दा करके, इन संस्थाओं के चलाने में करोड़ों रुपये खर्च हो चुके हैं पर फ़ायदा क्या हुआ? कुछ नहीं। अगर ऋषि दयानन्द के बताये हुए डेयरी फार्म के अनुसार आजकल हम काम करते तो इतना फ़ायदा होता कि कहा नहीं जाता, पर इस तरफ ध्यान देवे कौन? अक्ल को लगावे कौन! इसलिये अब मेल जोल से सामाजिक बल को बढ़ाओ। अब कहते हैं—खिदमत "सेवाभाव"। दूसरों की सेवा करना। सेवाभाव इस दुनिया के बीच में बहुत कठिन है इसके लिये कहा है—

सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः

एक बार पांडवों ने दरबार किया। उस समय किसी ने कुछ और किसी ने कुछ काम लिया। पर श्री कृष्णचन्द्रजी ने कहा कि मैं तो द्वार पर वालंटियर होकर काम करूंगा। जो आवेंगे उनका अतिथि सत्कार करूंगा। हाथ पांव धुलाऊंगा और जब काम करना होगा, काम करूंगा।

वेदों में कहा है कि वह पुरुष है जिसने दूसरों की सेवा की। देश में ऐसे सेवाभाव के विचार बिगड़े हुये हैं। देश में विद्या मौजूद है, हिमालय मौजूद है, नदियां मौजूद हैं, जीव शक्ति मौजूद है, लेकिन हमारे आन्तरिक व्यापार जब सुधरेंगे तो हम परमेश्वर के दर्शन कर सकते हैं। वेदों ने कहा है—

तदविष्णो परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम् ॥

दुनिया की जो दौलत है वह अमरपद है जिसके लिए हम मारे-मारे फिरते हैं। अमरपद कौन है? परमेश्वर। परमेश्वर पदकी प्राप्ति के लिए अमरपद में

से होकर गति करनी होगी। यदि हमारे भाव शुद्ध और सरल बन जावें और अमरपद को छोड़ दें तो अपने आप परमपद की प्राप्ति हो जाती है। लेकिन उसको कौन देखता है? ज्ञानी। सूरि नाम किसका है "सू गतौ" से सूरि बनता है गति, ज्ञान, गमन और प्राप्ति।

जिसका ज्ञान ठीक होगा वह उसके माफिक आचरण करता होगा और ज्ञान का प्रकाश निर्मल है वही परमात्मा को देखता है—कैसे देखता है? जिस प्रकार सूर्य की किरणें दुनिया को देखती हैं। उसके बीच में कोई भी रुकावट नहीं आती। इसी तरह आत्मज्ञान के द्वारा परमेश्वर का अपने में साक्षात्कार करता है और वह "सेंधवघनवत्" समुद्र में कहीं भी चला जावे पानी आपको खारा ही खारा मिलेगा। इसी प्रकार ईश्वर का साक्षात्कार सबको एक ही प्रकार का होता है। भिन्न २ या कम ज्यादा नहीं, इसमें कोई फर्क नहीं। अन्तः-करण परमेश्वर को कब देखेगा? जब उसमें सफाई होगी। इसके लिए मेरे कहने की क्या जरूरत। मैं अच्छा हूँ या नहीं मुझे मालूम नहीं। जो अपने अन्तःकरण को शुद्ध कर लेता है वह इस अधिकार को प्राप्त कर लेता है 'कृतकृत्योऽस्मि' वह कृतकृत्य हो जाता है। जो करना था उसने कर लिया।

प्राप्ति प्राप्तव्यम्—जो हासिल करने वाली बात थी हासिल करली।

द्रष्टं द्रष्टव्यम्—जो देखने योग्य वस्तुएं थीं सो देखलीं।

कृतं कर्त्तव्यम्—जो करना था सो कर लिया।

यदि तुम अपने अन्तःकरण को सफल बनाओगे तो तुम भी परमेश्वर को जानने लगोगे।

यह तीन बातें मैंने बताई थीं कि छोटे से प्यार करना, बराबर वाले से मुहब्बत करना और बड़ों की इज्जत करना। यह काम हो गये तो हम आप बन गये इसलिए सुनना-सुनाना सब कुछ ठीक है, परन्तु इसके आगे आप सुने हुए पर मनन करेंगे तो देश का भी उत्थान होगा और हमारा भी कल्याण आप कर सकोगे यदि ऐसा करोगे तो आनन्द मिल जावेगा। इस समय जैसा कर रहे हैं वैसा फल मिल रहा है। आगे जैसा करोगे वैसा फल पावोगे।

ओ३म् शान्तिः। शान्तिः। शान्तिः॥

——

प्रभु से मिलना मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है। इस पवित्र लक्ष्य को भुला कर हम अपना जीवन व्यर्थ कर रहे हैं। पता नहीं कब मृत्यु आ दरवाजा खटखटा दे, इसलिए संभल और अपना कर्तव्य पालन कर! भोले मनुष्य..............................!

वेदामृत

ओ३म् अन्ति सन्तं न पश्यति, अन्ति सन्तं न जहाति।
देवस्य काव्यं पश्य, न ममार न जीर्य्यति॥

यह वेदमन्त्र है। कोई भी ऐसा नहीं है जो साक्षात् अथवा परम्परा सम्बन्ध से ईश्वर का अनुनय ही न करता हो। सब चाहे लोकव्यवहार के बताने वाले हों, चाहे विज्ञान के, परन्तु सबको साक्षात् या परम्परा सम्बन्ध से ध्येय परमेश्वर की प्राप्ति में ही वेदमन्त्र बतायेंगे। साक्षात् सम्बन्ध होता है। जैसे आप से किसी ने पुस्तक मांगी। आपने उसको पुस्तक पकड़ा दी, यह तो हुआ साक्षात् सम्बन्ध। पुस्तक मैंने किसी को दी और उसने उसको दी, यह परम्परा सम्बन्ध है। चाहे मुख्य रूप से, चाहे गौण रूप से ईश्वर की ही विवक्षा वेद करता है।

अन्ति सन्तं न पश्यत्ति।

अविद्या-ग्रस्त जो मनुष्य है वह परमात्मा के यद्यपि अत्यन्त निकट है फिर भी नहीं देख सकता। एक तो यह बात, दूसरी बात यह है कि 'अन्ति सन्तं न जहाति' इसका इतना पटुतम सम्बन्ध है कि उससे अलग हो ही नहीं सकता। इसके बाद में कहा—

देवस्य काव्यं पश्य, न ममार न जीर्य्यति।

उस परमात्मा को जानने के लिये उस देव का जो काव्य है, उसको देखो! उसका फल क्या होगा? न फिर मृत्यु का सम्बन्ध है न जीर्णता का। कारण यह है कि जरा-मृत्यु व्याधियां ये सब संसार के मार्ग में हैं। संसार के मार्ग से पृथक् होने पर यह तीनों चीजें नहीं रहतीं। फिर आत्मा के साथ उनका सम्बन्ध नहीं होता। संसार के मार्ग में कही गई उन वस्तुओं से पृथक् हो जावे तो वह उस पूर्ण शक्ति को पहचान सकता है। इसका कारण यह है कि संसार के अन्दर हरएक चीज जो बनी हुई है उसका अवश्य ही कुछ न कुछ परिणाम है। कोई भी चीज ऐसी नहीं है जिसका कुछ परिणाम न हो। संसार के अन्दर जितनी चीजें बनी हुई हैं वे सब परिवर्तनशील हैं। किसी फारसी कवि ने कहा भी है—

जमाना यक बजाबूदे अगर नमेयाफ फरजन्द जाफर।

अगर जमाना एक रस रहने वाला होता तो आज जो बच्चा है वह कल बाप नहीं होता। जमाना बदलने पर छोटा बच्चा बाप की जगह ले लेता है और बाप रवाना होता है। समय एक रस रहने वाला नहीं; यह परिवर्तन-शील संसार एक-रस कभी नहीं रह सकता, एक २ क्षण बीतने पर संसार बीत जाता है। इस परिवर्तन की अवस्था को १ अरब ६७ करोड़ वर्ष के करीब बीत गये हैं। दिन रात के चक्कर में इतना लम्बा जमाना बीत गया। दिन-रात तो मोटा परिवर्तन हैं। दिन और रात मिलाकर २४ घंटे होते हैं। १ घंटे के६० मिनट होते हैं। १ मिनिट के ६० सेकिन्ड होते हैं। सेकिन्ड से भी छोटा समय कालवित् पुरुष ने क्षण माना है। इस क्षण का कोई भी विभाग नहीं किया जा सकता। एक क्षण बीता, दूसरा क्षण बीता और तीसरा क्षण भी बीत गया। इसी तरह क्षण २ करते इस सृष्टि को १ अरब ६७ करोड़ वर्ष बीत गये। संस्कृत का एक २ शब्द बहुत मतलब रखता है। समस्त संसार को क्षणभंगुर कहा गया है। एक २ क्षण में भी इसका परिवर्तन होता जाता है। इसके नाम से ही इसका अर्थ भी मालूम हो जाता है। जैसे भूगोल का नक्शा। इस नाम के कहने के साथ ही यह भी सबूत कर दिया गया कि पृथ्वी गोल है। सारी की सारी आयु इसी क्षण से ही बीती जाती है। मनुष्य का एक २ क्षण परिवर्तनशील है। जो चीजें बनी हुई होती हैं उन सब में परिवर्तन होता है। जो चीज बनी ही नहीं उस के अन्दर तो परिवर्तन की ताकत लग ही नहीं सकती। जैसे कणाद ऋषि ने कहा है—

नित्येष्वभावात् अनित्यषु भावात् कारणे कालाख्य।

इसकी ताकत जाहिर कहां है? नित्य में तो जाकर यह काल आप ही गुम हो जाता है। अनित्य में यह जाहिर होता है, जो पैदा ही नहीं हुई है उस पर काल की गति का असर नहीं होता। एक चीज पैदा हुई, उसको १० वर्ष बीत गये, ऐसा कह सकते हैं। इसके अन्दर भूतकाल भी है, वर्तमानकाल भी और भविष्यत्काल भी है। जो चीज पैदा ही नहीं होती वह कदीमी सिद्ध ही है। नित्य पदार्थों में काल का अभाव रहता है और अनित्य में काल का भाव।

भाइयो! संसार के अन्दर जो कोई चीज बनी है वह काल के प्रभाव से ही बनी है। बिना काल की सहायता से कोई नहीं बन सकती। इससे काल की महत्ता जाहिर है। संसार में जिसने पहचान लिया कि समय एक वस्तु है, उसने समय व्यर्थ नहीं खोया। जिसने समय के महत्व को नहीं समझा, परन्तु समय तो बीतता ही चला गया, वह समय ठहर नहीं सकता। जैसे एक बच्चा

१८ वर्ष का हो गया और उसने बी० एस-सी० पास कर लिया और जिसने नहीं पढ़ा वह भी १८ वर्ष की आयु का तो हो ही गया, उसकी लापरवाही से उसमें फल नहीं आया, परन्तु जिसने बी० एस- सी० की पढ़ाई की तो उस को फल की प्राप्ति हो गई। समय दोनों का बीता। इसका मतलब यह है कि समय की कीमत को पहचानना चाहिये।

'समय एव करोति बलाबलम्'

समय ही मनुष्य को बलवान और निर्बल कर देता है। जिसने खेलने-कूदने में ही समय बिता दिया, समय का महत्व नहीं समझा तो वह दुर्बल हो जाता है। अगर समय को समझ लेगा तो वह बलवान् हो जायगा। समय तो दोनों का ही बीतता है, किसी का नहीं ठहरता, इसलिए जो अक्लमन्द आदमी है वही समय का उपयोग ठीक रीति से करते हैं, क्योंकि—'गया वक्त फिर हाथ आता नहीं, गया ऐश आराम पाता नहीं', गया वक्त हाथ में नहीं आता इसलिए ज्ञान को प्राप्त करने में समय को बिताना चाहिए, क्योंकि ज्ञान नित्य वस्तु है नित्य वस्तु पर काल का प्रभाव नहीं होता। इसलिए कहा है कि—

'देवस्य काव्यं पश्य'

वह परमेश्वर, जो देव है, उसके काव्य को देख। उस देव का काव्य वेद ही हो सकता है और वह वेद चार प्रकार के हैं—

ऋग्, यजुः, साम और अथर्व०

अब हम तो वेदों को मानते हैं, परन्तु दूसरे नहीं मानते, मुसलमान नहीं मानते, ईसाई नहीं मानते। वह कहेंगे कि हम तो वेद को नहीं मानते तो यह ठीक है। वेद नाम ज्ञान का है। कोई भी इन्सान यह नहीं कह सकता कि मैं ज्ञान को नहीं मानता। अगर कोई ऐसा कह दे तो उसकी मूर्खता होगी। तो वह ज्ञान चार प्रकार का है—ऋग्, यजुः, साम और अथर्व जैसे गणित के चार भेद हैं—जोड़, बाकी, गुणा और भाग, इनके अन्दर ऐलजब्रा वगैरह सब आजाते हैं। इसी तरह ज्ञान के भी चार भेद हैं। जो आदमी उन्नति की तरफ जायगा वह देखेगा कि हिन्दुस्तान पतितावस्था में है। मैं तो कहूँगा कि हिन्दुस्तान पतितावस्था में नहीं, वह तो और सब देशों को मालामाल बनाने वाला है। जुगराफिये में अगर आप देखेंगे तो आपको मालूम होगा कि जैसा यह है वैसा और कोई दूसरा देश नहीं है। परन्तु आजकल के इतिहास में बिलकुल निकम्मा सिद्ध होता है, क्योंकि हमारे में आलस ज्यादा है। जो काम जिस समय करना चाहिये, उस समय नहीं करते, बेमतलब के लड़ाई-झगड़े करते हैं। सब आदमियों को अगर कोई एक विद्वान् आदमी अच्छे रास्ते पर लेजाना चाहे तो वह आदमी अक्लमन्द और ज्ञानवृद्ध होना चाहिए, तभी लेजा सकता है।

अब हम ऋक् को लेंगे। ऋक नाम स्तुतिकर्म का है। वेद तो सामान्य शब्द है। उसके साथ में ऋग्, यजुः, साम और अथर्व ये चार विशेषण लगे हुए हैं। ऋग् जो है वह स्तुतिकर्म है। जब कोई अक्लमन्द आदमी होगा वह पहले परमेश्वर की बनाई हुई चीजों की तारीफ करेगा। मूर्त्तियों को हमने बना लिया और कह दिया कि यह परमेश्वर है, लेकिन जब परमेश्वर की तारीफ करेंगे तो कहेंगे कि परमेश्वर सर्व व्यापक है, सर्वशक्तिमान् है, सर्वज्ञ है, सर्वत्र व्याप्त है। इन विशेषणों से जब हम परमात्मा की स्तुति करेंगे तो पता लगेगा कि मूर्त्ति ही ईश्वर है या कोई और ही शक्ति। यह जो ज्ञान है ऋग् है। अब हम सांसारिक पदार्थों में यों ही चले आते हैं। एक आदमी ने गुलाब के फूल को देखा, उसमें खूब अच्छी सुगन्धि है, रंग भी बहुत अच्छा है। इसे देख कर वह आदमी कहता है कि यह फूलों का राजा है। पहले तो उसने सुगन्धि की तारीफ की। इसके बाद में उसने विचारा कि यह दिमाग़ को तर करने वाला है, मनोहर है, सुन्दर है। जिस जमीन पर ये पत्तियां गिर जाती हैं उस जमीन की मिट्टी सुगन्धित हो जाती है। यह सारा ऋग् का स्थान होगा। दूसरा है यजुः, उसमें यह विचार आता है कि यह सुगन्धि है तो अच्छी, परन्तु यह उस फ़ूल से अलग रहते हुए भी स्थिर रह सकती है या नहीं। यजुषः का काम यह है कि वह भिन्न वस्तुओं के योग से कोई उपयोगी पदार्थ बना सके। उसी को लेकर यजुः ही के ज्ञान के बल से तरह-तरह के इत्र, हिना वगैरह तैयार किये जाते हैं। ये संदल की भूमि पर बनते हैं। इत्र कैसे निकलता है? जैसे सौंफ का अर्क निकाला जाता है, उसी तरह से उधर तो तीन-चार तोले संदल का तेल डाल देते हैं और इधर गुलाब के फूल डाल देते हैं। संदल के तेल का यह स्वभाव है कि वह अपनी सुगन्धि को छोड़ कर दूसरी सुगन्धि को तत्काल ग्रहण कर लेता है। संदल का तेल १) तोला मिलता है और वह १) तोले की कीमत से १०) रु० तोला कैसा हो गया? उसने अपने आपको छुपाया। अपने को जाहिर नहीं किया। दूसरे के गुणों को ग्रहण किया। अपने को छुपाकरके जो दूसरे के गुणों को प्रकट करता है, उसकी कीमत इसीलिये बढ़ जाती है। संदल के तेल की कीमत इसीलिये बढ़ जाती है कि वह अपने गुणों को छुपा करके दूसरों को जाहिर कर देता है। अगर उसमें हिना डाल दो तो वह हिना हो जाता है, मोतिया डाल दो, मोतिया बन जाता है। इसी तरह जो इन्सान दूसरे के गुणों को दिखाने वाले होते हैं, उनकी कीमत बढ़ जाती है। जो अपने ही को दिखाते रहेंगे, उन लोगों की कीमत नहीं बढ़ सकती है। जैसे सरसों का तेल है, उसमें कितना ही हिना डाल दो, तो भी वह अपने रोगन और अपनी बू को नहीं छोड़ेगा। सरसों के तेल की कीमत इसीलिये नहीं बढ़ती कि वह अपने आप को दिखाता है। तो इस तरह यजुषः का स्थान है मेल करना। किसी चीज के मिलाने से कौन-सी ताकत होगी? यह है यजुः का काम।

जैसे गुलाब की सुगन्धि में संदल के मिला देने से इत्र बन गया, बस इसी ज्ञान का नाम यजुर्वेद है। अब साम क्या है। ऋग् प्रशंसा करता है। उपयोग बताना काम यजुः का है। उसका जो नतीजा निकला, वह बताना साम का काम है। हरएक आदमी नतीजे को देखता है। अगर कोई इम्तिहान देता है और वह उसके अन्दर फर्स्ट डिवीजन में आ जाता है, तो उसको बहुत ही खुशी होती है। परमेश्वर के सच्चे स्वरूप को जानने के लिये जो कोशिश करता है और जब वह परमात्मा के स्वरूप को पहिचान लेता है तो वह परमात्मा-स्वरूप बन जाता है। यह साम है। अथर्व का कोई स्थान नहीं है। सब ने देखा है। यजुः को मूल में रख कर जोड़ा है। साधन की निजामी का लेकर उसी में कुछ न कुछ उन्नति करने या बढ़ाने को ही अथर्व कहते हैं। जैसे आज कल बड़ी लाईन पर बड़े-बड़े इञ्जन दौड़ते हैं। वे ४० फीट लम्बे और १६ फीट चक्करदार होते हैं। अगर गुणों को न लेते गये होते और कुछ न कुछ बढ़ाए नहीं गये होते तो आज क्या इतने बड़े इञ्जन नज़र आ सकते थे? पहले के जो इंजन थे, वे बिलकुल छोटे-छोटे थे। अथर्व कोई निज की वस्तु नहीं रखता, परन्तु वह साम के नतीजा निकालने के पश्चात् जो-जो उसके अन्दर रुकावटें डालने वाली वस्तुएं हैं, उन सबको हटाता है और उन की सहायक वस्तुओं को इकट्ठा करता है। इसीलिए कहा है कि—

"पश्य देवस्य काव्यम्"

देव का काव्य क्या है! किसी ने कह दिया कि दीवान हाल अच्छा है। यह तो मेरा शब्द-ज्ञान हुआ, परन्तु मैंने देहली में जाकर दीवान हाल को देखा, यह मेरा देखना हुआ। इसी तरह से परमात्मा का ज्ञान यहां पर वेद में विद्यमान है। मैंने जिसका भजन किया वह परमात्मा सारी सृष्टि में विद्यमान है।

किसी भी चित्र को देख कर तीन बातों का ज्ञान होता है। जिसका चित्र होगा, उसके चरित्र का ज्ञान होगा, चित्रकार चित्र बनाने वाले के चरित्र का ज्ञान, तीसरे उस चित्र का ज्ञान होगा। इसी तरह चित्र देखने से, जिसका चित्र होगा, उसकी तसवीर मालूम होगी, चित्र खींचने वाले की तदबीर मालूम होगी और फिर उस चित्र की जो तदवीर है, मालूम होगी। घड़ी ही मौजूद है, उसको देखने से ज्ञान होता है कि ९ बजे हैं। संसार की जितनी भी वस्तुएं हैं, उन सब में ज्ञान का विषयक सम्बन्ध से है, परन्तु जो परमात्मा है, उसके अन्दर ज्ञान का स्वरूप सम्बन्ध है। संसार बाह्य है। संसार का कोई न कोई तो कर्त्ता अवश्य है। जैनी लोग कहते हैं कि संसार का कोई कर्त्ता नहीं है तो यह कैसे हो सकता है? किसी कारीगर ने एक भद्दी तस्वीर बनाई, चलता हुआ एक छोटा लड़का भी जिसको देखकर कहेगा कि यह भद्दी

तस्वीर किसने बनाई है ? तो फिर जो सृष्टि चित्र, विचित्र, अद्भुत, अनुपम बनी है, वह किसी न किसी की बनाई हुई अवश्य है। लेकिन देखने वाला हर एक व्यक्ति सृष्टि के सौन्दर्य और चित्र-विचित्रता के अन्दर ही मोहित हो जाता है, क्योंकि संसार तो बड़ा विचित्र है। एक से एक खूबसूरत चीजें जब आदमी उसको देखता है, तो वह उसकी सुन्दरता में फंस कर उसके बनाने वाले को भूल जाता है। उसका जो मुसव्वर परमेश्वर है, उसके पास नहीं ले जा सकता। एक पुरुष ने एक बहुत अच्छा बगीचा लगाया, उसके अन्दर कई अच्छे २ मकान, फव्वारे; पौधे, फुलवारी वगैरह लगाये। अब उसके अन्दर जो आदमी देखने गये, उनमें से एक ने कहा कि यह फव्वारा कितना अच्छा बना हुआ है। एक ने कहा—पानी कितना ठण्डा है। एक ने कहा कि ये फूल कितने अच्छे हैं। वहां पर एक आदमी आया और उसने कहा कि अरे, तुम लोग इन चीजों की क्या प्रशंसा करते हो, बनाने वाले की प्रशंसा करो। जिस तरह वे लोग बगीचे को देखते हुए भूल गये, उसी तरह संसार की चीजों को देखकर मनुष्य उसके कर्त्ता को भूल जाता है। वही मनुष्य विद्वान् है, अक्लमन्द है, जिसने संसार को देखकर उसके करने वाले को पहचाना है और उसको नहीं भूला है। संसार क्या है ? संसार तो एक इशारा है। संसार की हर एक चीज़ इशारा कर रही है। जो विद्वान् होता है वही उसको पहिचान सकता है। जो अद्वितीय अनुपम कर्त्ता को पहिचानता है, वही विद्वान् है।

प्रभु विश्वास

जिधर देखता हूं खुदा ही खुदा है।
खुदा से नहीं चीज कोई जुदा है।
जब अव्वल और आखिर खुदा ही खुदा है।
तो अब भी वही कौन उसके सिवा है॥
सर्व भरोसे छोड़ के, आया तेरे द्वार।
मेरे कर की तार है, कर तेरे करतार।
कहते हैं प्रभु इसलिए, तुमको सब करतार।
रहत सदा है जगत् की, तेरे ही करतार॥
नहीं संयम, नहीं साधना, नहीं तीर्थ व्रत दान।
मात भरोसे रहत है, ज्यों बालक नादान॥

——

११

दुःख और सुख

एक श्लोक यह है:—

निर्मानमोहाजितसंगदोषा अध्यात्मनित्याविनिवृत्त-कामाः । द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्य-मूढाः पदमव्ययं तत् ॥

संसार में दुःख के कारण हैं मान और मोह ! इस मान और मोह से जो दूर है वह है निर्मानमोहा। निर्गतौ मानमोहौ येषां ते निर्मानमोहः। मोह क्या है और मान क्या है ? संसार की वस्तुओं में दिल की अज्ञानपूर्वक फँसावट का नाम है मोह। मोह दुःख का कारण है, पर जिस मनुष्य के दिल की फंसावट संसार की किसी वस्तु में ज्ञानपूर्वक है उसका नाम प्रेम है। यह (प्रेम) सुख का कारण है।

दो लड़के थे। उनका आपस में प्रेम हो गया। वे कालेज में पढ़ते थे। एक अक्लमन्द था तो दूसरा भी चतुर, लेकिन थोड़ा बहिर्मुख था। वह सोडा-वाटर पीता था चाहे प्यास हो या न हो। एक दिन उसने अपने दूसरे मित्र से वर्फ का पानी पीने का आग्रह किया। उसने कहा जब प्यास लगेगी तब पानी पीवेंगे। कोई आदमी धूप में से आया हो और घबराया हुआ हो, उसको उस वक्त ठण्डा पानी पीने पर जो आनन्द आता है वह आनन्द वगैर प्यास के पीने वाले को नहीं आता। मैं अपनी बात कहता हूं कि जब मैं गाड़ी से चला आ रहा था तो मुझे प्यास लगी। मुझे किसी स्टेशन पर ठण्डा पानी नहीं मिला, तब तक मेरी प्यास रुकती रही। मैं कमण्डल खिड़की से बाहिर निकाले था। जैपुर में एक आदमी ने कहा—"क्या आपको पानी चाहिये ?" मैंने कहा "हां भाई !" वह ठण्डा पानी लाया। मैं उसकी तारीफ करने लगा। देशवासियों की आदत खराब हो गई कि वे प्यास के बिना ही सोडा और बरफ का व्यवहार करने लगे हैं। मेहनत करने के पीछे आराम कितना अच्छा सुख का देने वाला है यह हमें तब मालूम होगा जब हम मेहनत करें। इसी प्रकार खूब प्यास लगने पर ही ठण्डे पानी का आनन्द आ सकता है।

सुकरात जैसे आदमी भी दुनिया में हुए हैं। उससे कभी किसी ने पूछा

कि क्या आप कभी ठण्डा पानी पीते हैं ? उसने कहा—जिस समय मुझे प्यास अच्छी लग जाती है उस समय पानी पीता हूँ। किसी ने कहा कि हम तुम्हारे खाने में कभी चटनी नहीं देखते हैं। उसने कहा—जब खूब भूख लगती है उसी समय मैं खाता हूँ, चाहे वह दाल हो या चटनी हो या और कोई खाने की चीज हो। जब भूख या प्यास नहीं लगती है तब न तो कुछ खाता हूँ और न पीता हूँ।

प्राचीन आर्यों ने भोजन को तीन भागों में बांटा है (१) हित (२) मत और (३) ऋत। हमें भोजन कैसा करना चाहिए? हित अर्थात् हितकारी ऐसा भोजन जो शरीर को फायदा पहुँचावे और दूसरा मित अर्थात् परिमित भोजन करे, भूख से ज्यादा नहीं खावे और तीसरा ऋत यानी समयानुकूल भोजन करे। यह तो हुई प्राचीन आर्यों की बात। आजकल तो ऐसा है कि ब्राह्मण लोग जब किसी दावत या भोज में सम्मिलित होते हैं तो पहले भांग पी लेते हैं ताकि तीन चार लड्डू ज्यादा खावें। खाने के वक्त तो वे ज्यादा खा जाते हैं पर पीछे तकलीफ उठाते हैं। इस वास्ते वह लड़का जो सोडावाटर पीता था, रोज सिनेमा भी देखता था, पर दूसरा जो न तो सोडावाटर या सिगरेट ही पीता था, न सिनेमा का ही शौकीन था, उससे उसके मित्र ने पूछा—मित्र कभी सिनेमा में भी नहीं जाते और न सोडावाटर ही पीते हो ? उसने कहा—ठीक है कोई बात नहीं। मैं कभी-कभी जब जरूरत होती है तब सोडावाटर भी पी लेता हूँ और सिनेमा भी देख लेता हूँ पर तुम्हारी तरह हमेशा नहीं, तुम्हारी तो आदत ही ऐसी हो गई है। अच्छा तुम मुझे सिनेमा में आज क्यों ले जाते हो ? उसने उत्तर दिया—तुम हमारे मित्र हो सिनेमा में जाओगे तो हम तुम बराबर हो जावेंगे। उसने कहा कि यदि तुम नहीं ले जाओगे तो भी तो हम तुम दोनों बराबर ही रहेगे। आखिर वही हुआ, वह सिनेमा नहीं गया। बहुत से निकम्मे लड़कों को बहुत से बुद्धिमान लड़के अपनी बुद्धिमानी से प्रभावित करके अपनी तरफ आकर्षित कर लेते हैं। इसी प्रकार एक और उदाहरण लीजिये—

एक आदमी था, पहले के लोग अंगूठी पहना करते थे पर आजकल के लोग नहीं पहिनते, उस आदमी के एक कोई मित्र था। उस आदमी ने अपने मित्र से कहा—"तुम हमारे मित्र हो, इस समय मुझे एक अंगूठी की जरूरत है। तुम हमें दो। हम तुमको याद करेंगे।" उसने कहा—क्या याद करोगे ? उसने उत्तर दिया—याद करेंगे कि देखो हमारे एक मित्र था, उन से हमने तीन-चार दिन के लिये एक अंगूठी मांगी थी सो उन्होंने दी। उसने उत्तर दिया—मैं तो तुम्हें अंगूठी नहीं दूंगा तब भी याद रह जाऊंगा कि मेरे मांगने पर भी मित्र ने मुझे अंगूठी नहीं दी। इस वास्ते मोह जो है यह दुःख का कारण है। मनुष्य का प्रेम ज्ञान-पूर्वक होना चाहिये। अज्ञान पूर्वक दिल की

लगन का नाम मोह या ज्ञान पूर्वक दिल की लगन का नाम प्रेम है। यह द्वन्द्व की चर्चा।

मान क्या है ? अन्तःकरण की प्रवृति को मान कहते हैं अर्थात् आन्तरिक दिल की फंसावट जो होती है उसका नाम मान है और मान और मोह जो हैं ये दोनों ही दुःख के कारण हैं। इन दोनों से मुक्त होने पर ही हम निर्मानमोहा हो सकते हैं।

अब आगे है "जितसंगदोषाः" संगदोष को जीत लिया है। संग दोष बहुत बुरी चीज है। इसको आप भी स्वीकार करेंगे, इससे बहुत से दूसरे अवगुण पैदा हो जाते हैं। जैसे गीता में कहा है—

संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ।
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।

जैसे संग में बैठ जावोगे वैसे ही विचार हो जावेंगे। सोहबत का असर अवश्य हो जावेगा। लेकिन इस संग का असर किस पर होगा जो मान और मोह में बंधे हैं, परन्तु जो मान और मोह को जीत कर निर्मनमोहा हो गये हैं उन पर इस संगदोष का असर नहीं होता। वे जितसंगदोषा कहलाते हैं। "पद्मपत्रमिवाम्भसा" कमल के फूल की तरह जो जल के बीच में रहता है और जल ही में वृद्धि को प्राप्त होता है। परन्तु वह उसके दोष से अलिप्त रहता है, क्योंकि उसमें संगदोष नहीं है पानी की बूंद अगर उसके ऊपर पड़ जावे तो भी वह पत्ता गीला नहीं होता है। वह बूंद मोती की तरह गोल बन कर पत्ते पर इधर-उधर हिलती रहती है, पर उसके ऊपर कोई असर नहीं होता परन्तु यदि किसी पीपल या बड़ वृक्ष के पत्ते पर पाती की बूंद गिर जावे तो वह पत्ता गीला हो जाता है। ये दोष "निर्मानमोहा" में नहीं हो सकते।

अब अध्यात्मनित्याविनिवृत्तकामाः ।

आत्मचिंतन में, आत्म विचार में आप कहें कि किस तरह से रह जाता है। देखो—

जिसके लिए यह सब चीजें हैं वह कैसा है। अगर इसका पता लग जावे तो फिर किसी को कोई दुःख न रहे।

एक वक्त का ज़िक्र है कि पंजाब के एक गांव में एक आदमी मिट्टी (लीपने की मिट्टी) खोदने गया। पहला फावड़ा मार कर कुछ मिट्टी उसने अपनी टोकरी में डाली। दूसरा फावड़ा मारा तो वह एक पात्र पर पड़ा। वह पात्र तांबे का था। उस पात्र में जब उसने देखा तो उसे बहुत-सी अशर्फियें व रुपये दिखाई दिये। वे क़रीबन ५-४ हजार की चीजें थीं, जो कि एक छोटे से पात्र

में रक्खी थीं। जिस समय उसने फावड़ा मारा था तो वह अगूठे पर भी लगा था जिससे उसका अंगूठा कट गया था पर उसने उस वक्त खुशी के मारे उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया। वह उस पात्र को मिट्टी में छिपा कर घर ले गया और अपनी स्त्री से कहा कि इसको सम्भाल कर रख। फिर जब वह अपने इस काम से निवृत्त हुआ तो उस अंगूठे के कटने के दुःख से बहुत व्याकुल हो गया, लेकिन पहिले कुछ भी दर्द मालूम नहीं हुआ। सामने पैसा आ गया था, जिसकी खुशो से उस का दुःख दब गया था। वह तो पैसे की खुशी थी, पर जिसको आत्मा का पता लग जावे तो उस खुशी को वही जान सकता है, दूसरा नहीं तो "अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामः" इसका अर्थ अध्यात्मचिन्तन में मस्त रहना, यह अवस्था जिसकी हो जाती है, उसकी सब कामनाएं दूर हो जाती हैं।

"इच्छा द्विविधा" इच्छा दो प्रकार की है। एक स्वार्थ इच्छा, और दूसरी परार्थ इच्छा। जैसे यह उसको दो, यह मेरे को दो। अगर उसकी चेष्टा अपने निज के लिए है तो वह स्वार्थ इच्छा कहलाती है। अगर उसकी चेष्टा अपने निज के लिये नहीं तो वह परमार्थ इच्छा कहलाती है।

आगे "द्वन्द्वैर्विमुक्ताः" द्वन्द्व अर्थात् दुःख और सुख उससे मुक्त हो गये। जीवन्मुक्त दशा के बीच में यह शरीर ही आगे नहीं मिलता है। शरीर के साथ ही सुख और दुःख दोनों हैं, जीवन्मुक्त को न मान की इच्छा है, न लोभ की और न लालच की। यदि उसके जीवन में शक्ति है तो वह लोकोपकारार्थ अर्थात् दूसरों की भलाई के लिये कार्य करता है उसके लिए तो कोई दूसरा काम ही नहीं। बड़े आदमियों का ऐसा ही स्वभाव होता है।

महात्मा गांधी आ रहे थे। किसी ने कह दिया अरे! इस बोरे को उठा कर इधर रखना। इस जगह यदि कोई दूसरा आदमी होता तो कहता कि क्या मैं तेरे बाप का नौकर हूँ जो उठा कर रक्खूं। आप भी यही जवाब देते, परन्तु महात्मा जी ने उसे उठा कर ठीक जगह पर रख दिया। जब वे उठा कर चले तब लोगों को मालूम हुआ कि ये तो महात्मा गांधी हैं। तब तो उस को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। महात्मा जी ने कहा—इसमें पश्चात्ताप करने की तो कोई बात नहीं है। तुम में इस वजन को उठाने की शक्ति नहीं, मैंने इसको उठा कर रख दिया, तो इस प्रकार एक दूसरे को मदद देना आदमी का कर्त्तव्य है। यह जो काम महात्माजी ने किया पैसों के लिए नहीं किया। इस प्रकार अपने को भी किसी की मदद के लिये कुछ उठा रखना चाहिए। विनि-वृत्तकाम दूसरों के हित के लिये है, अपने निज के लिए नहीं। महर्षि दयानन्द को कौनसा सुख हुआ? कुछ नहीं। फिर अपने सारे संसार के सुखों को छोड़ कर जवानी की हालत में सारे काम को छोड़ कर क्यों धर्म प्रचार किया? उनकी

निजी कोई कामना नहीं थी। यदि कोई कामना है तो संसार के कल्याण और भलाई की। वे चाहते थे कि संसार सुखमय हो जावे। कहा गया है कि "द्वन्द्वैविमुक्ताः सुखःदुख संज्ञैः" का।

कागज को आप जलादो। जल जावेगा और फिर उसके आप अक्षर भी पढ़ लीजिए। आप उनको पढ़ सकते हैं। लेकिन इस कागज की पुड़िया भी आप बांध सकते हैं? नहीं जरा हवा की लहर आई कि वह उड़ जाएगा। इसी तरह यदि रस्सी को जला दो तो वह जल जावेगी, वह जल जाने पर भी उस के बट वैसे ही नजर आवेंगे। पर किसी चीज को उससे नहीं बांध सकते।

इसलिए सुख और दुःख से अलग हो गये। शरीर पर कुछ उसका असर नजर आता है। यह भी होगा कोई परवाह नहीं। यह भी प्रारब्ध की वस्तु है। पर अन्त में—

"गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्"

अमूढा=मोह रहित। जो मोह से रहित हो गये और जिन्होंने निज स्वरूप को जाना वे "गच्छन्ति अमूढा पदं अव्ययं तत्" उस पद को जो "अव्यव" है प्राप्त हो जाते हैं।

दोनों ही मार्ग अच्छे है कोई किसी मार्ग में जाता हैं, कोई किसी मार्ग से जाता हैं उसके विषय में—

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः,
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।

निर्मानमोह जित संगदोषाः,
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुख दुःख संज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढा पदमव्ययं तत्॥

इलम चाहे पढ़ लिया, आलिम कहाया क्या हुआ,
जब तलक इस पर अमल करना न आया क्या हुआ।

इलम का पढ़ना इसी खातिर, कि इस पर अमल हो,
वरना यों ही मुफ्त में, सिर ही खपाया क्या हुआ॥